ओ३म्

# दयानन्दसन्देश

## आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

**जुलाई २०१९**

Date of Printing = 05-7-19
प्रकाशन दिनांक= 05-7-19

वर्ष ४८ : अङ्क ८
दयानन्दाब्द : १९५
विक्रम-संवत् : ज्येष्ठ-आषाढ़ २०७६
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२०

**संस्थापक** : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओमप्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
**दयानन्दसन्देश** (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
म्.उंपस रू ेंचजणपदकपं/हउंपसण्बवउ

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

## इस अंक में

- पाप-पुण्य और प्लास्टिक २
- वेदोपदेश ३
- योग हमारी आध्यात्मिक विरासत ५
- ऐसा क्या किया सावरकर ने ? ६
- आचरण के छिद्र १३
- महाभारत के बाद...... १४
- मूर्तिपूजा से समाधान..... १६
- वे भी क्या दिन थे ! १८
- सूर्यादि के धरता १९
- हमारे राजनेताओं द्वारा.... २०
- पुनर्जन्म शास्त्रानुमोदित है २४

**विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।**

**सत्यार्थप्रकाश**

**प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा**
**स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।**

# पाप-पुण्य और प्लास्टिक

(पं० रामनिवास गुणग्राहक,श्रीगंगानगर)

भारत एक धर्मप्राण देश है। धर्म व ईश्वर की अवधारणा विश्व के लिए भारत की ही देन है। इतना होने पर भी काल की कराल गति ने इस देश को ऐसे अन्धकूप में धकेल दिया कि हम ऋषियों की सन्तान कहलाने वाले धर्म और ईश्वर के बारे में सबसे अधिक भ्रान्ति में जी रहे हैं। हमें धर्म और ईश्वर के बारे में उतनी भी जानकारी नहीं है कि अगर कोई एक-दो प्रश्न कर दे तो हम सन्तोषजनक उत्तर दे सकें। हम यहाँ धर्म-ईश्वर पर चर्चा नहीं कर रहे, बस यह बताना चाहते हैं कि धर्म हमारे जीवन की हर छोटी-बड़ी क्रियाओं के साथ जुड़ा हुआ है। हम जाने- अनजाने में अपने किसी भी काम से दूसरों को दुःख पहुँचा रहे हैं तो हम पाप कमा रहे हैं। आज हमने जो जीवनशैली बना रखी है, उसमें जाने-अनजाने हम पाप अधिक कमा रहे हैं। हम जितने सुविधाभोगी बनेंगे, उतने ही धर्म और पुण्य से दूर होकर पाप-पंक में धँसते चले जाएंगे।

आज के युग में जबकि हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का तर्कपूर्ण शैली में अधिकार के रूप में प्रस्तुत करने में पारंगत होते चले जा रहे हैं ऐसे में 'अपना काम बनता तो भाड़ में जाए जनता' जैसे नये मुहावरे गढ़कर हम अपनी साहित्य सम्बन्धी सोच को भी विकृत करने तक पतित हो गये हैं। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का नारा लगाने वाला मेरा भारत, विश्वकल्याण तक की सोच रखने वाला हमारा साहित्य, जनकल्याण में ही आत्म-कल्याण देखने वाला हमारा दर्शन, किसी मनुष्य व प्राणी को कष्ट में देखकर व्याकुल हो जाने वाला भारतीय जन-मन न जाने कब और कैसे घोर स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित हो गया? भर्तृहरि मानव की स्वार्थ और परार्थ मनोवृत्ति को खोलकर बताते हैं कि जो व्यक्ति अपने स्वार्थ को छोड़कर परार्थ-दूसरों का भला करते हैं, वे देवता हैं। जो अपना काम करते हुए दूसरों के हित का ध्यान भी रखते हैं- परोपकार भी करते हैं, वे मनुष्य हैं। जो अपना काम बनाने के लिए दूसरों की ओर ध्यान नहीं देते, दूसरों की हानि कर डालते हैं, वे राक्षस हैं तथा जो बिना स्वार्थ के ही दूसरों की हानि करते हैं, दूसरों को दुःख देते हैं। भर्तृहरि कहते हैं कि वे कौन हैं उनको क्या कहा जाए ये मुझे भी नहीं पता। सुधी पाठक अपने व्यवहार की स्वयं जाँच करें कि भर्तृहरि द्वारा बताई चार श्रेणियों में वे कहाँ खड़े हैं?

प्लास्टिक की थैलियाँ और पानी की बोतलें हमारे लिए कितनी उपयोगिता रखती हैं- बाजार से घर तक सब्जी या राशन का सामान घर ले जाने की छोटी सी सुविधा देने वाली थैलियाँ तथा पानी या कोल्ड ड्रिंक (शीतलपेय) पीने के बाद प्रायः वर्षों तक घातक कचरा बनकर रह जाने वाली प्लास्टिक की बोतलें आज पर्यावरण के लिए कितनी घातक बन चुकी हैं, ये आज हमारी कल्पना से भी बाहर है। प्रशान्त महासागर का साढ़े नौ लाख वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र प्लास्टिक कचरे का कूड़ादान बन चुका है। व्हेल जैसे जलचर इसके कारण मर रहे हैं। स्पेन में समुद्र के किनारे मृत पड़ी व्हेल के शरीर में २२ किलो प्लास्टिक मिला। प्लास्टिक से बनी विभिन्न वस्तुओं से मात्र नौ प्रतिशत ही रिसाइकल (पुनर्निर्मित) हो पाती हैं- ९१ प्रतिशत कचरे के रूप में पड़ी रहती है। हमारे गाँव नगर की नालियों की स्थिति हम देखते रहते हैं। आँकड़े बताते हैं कि प्रतिवर्ष ८० लाख टन प्लास्टिक कचरा समुद्रों में बढ़ रहा है। संसार के बीस देश ऐसे जो ८० प्रतिशत प्लास्टिक कचरा फैलाते हैं, उनमें भारत का बारहवां स्थान है। प्लास्टिक के इस कचरे में बोतलें व थैलियों की मात्रा ही सबसे अधिक है। प्लास्टिक का कचरा दशकों तक नष्ट नहीं होता, कचरे की बढ़ती आमद से स्थिति भयावह होती चली

शेष पृष्ठ ८ पर

ओ३म्

**वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द**

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **अग्निः = भौतिकोऽग्निः।।** निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः।।

**अथ यज्ञस्य स्वरूपमंगानि चोपदिश्यन्ते।।**

अब यज्ञ के स्वरूप और उसके अंगों का उपदेश किया जाता है।

**ओ३म् शर्मास्यवधूतं रक्षोऽवधूता ऽ अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु।।१६।।**

**पदार्थः** **(शर्म)** सुखहेतुः **(असि)** भवति। **अत्र सर्वत्र व्यत्यय (अवधूतम्)** विनाशितम् **(रक्षः)** दुःखं निवारणीयम् **(अवधूताः)** निवारणीया = विचालिता हताः। **अवेति विनिग्रहार्थीयः।। निरु. १।३।। (अरातयः)** अदानस्वभावाः=कृपणाः **(अदित्या)** अन्तरिक्षस्य **(स्वक्)** त्वग्वत् **(असि)** भवति **(प्रति)** क्रियार्थे **(त्वा)** तं यज्ञम् **(अदितिः)** यज्ञस्यानुष्ठाता यज्ञमानः। **अदितिरिति पदनामसु पठितम्।। निघं. ५/५।। इति यज्ञस्य ज्ञाता पालकार्थो गृह्यते (वेत्तु)** जानातु **(धिषणा)** वाक् वेदवाणी ग्राह्या। **धिषणोति वाङ्नामसु पठितम् ।। निघं. १।११।।** धृष्णोति सर्वा विद्या यया सा। **धृषेर्धिष् च संज्ञायाम्।।उ. २/८२।। अनेनायं शब्दः सिद्धः।** महीधरेण धिषणेदं पदं धियं बुद्धिं कर्म वा सनोति व्याप्नातीति भ्रान्त्या व्याख्यातम् **(असि)** भवति **(पर्वती)** पर्वणं=पर्बहुज्ञानं विद्यतेऽस्यां क्रियायां सा पर्वती। **अत्र संपदादित्वात् क्विप्।** भूम्नि **मतुप् (उगितश्चेति)** ङीप् **(प्रति)** वीप्सार्थे **(त्वा)** तां ताम् **(अदित्याः)** प्रकाशस्य **(त्वक्)** त्वचति=संवृणोत्यनया सा **(वेत्तु)** जानातु **(दिवः)** प्रकाशवतः सूर्य्यादिलोकस्य **(स्कम्भनीः)** स्कम्भं=प्रतिबद्धं नयतीति सा **(असि)** भवति **(धिषणा)** धारणवती द्यौः। **धिषणेति द्यावापृथिव्योनामिसु पठितम्।। निघं. ३/३०।। (असि)** अस्ति **(पार्वतेयी)** पर्वतस्य मेघस्य दुहितेव या सा पार्वतेयी। **पर्वत इति मेघनामसु पठितम्।। निघं. १।१०।। पर्वतस्येयं घनपंक्तिः=पार्वती तस्यापत्यं दुहितेव पार्वतेयी वृष्टिः।। स्त्रीभ्यो ढक्।। अ. ४।१।१२०।। अनेन ढक् (प्रति)** इत्थं भूताख्याने **(त्वा)** तामीदृशीम् **(पर्वती)** पः=प्रशस्तं प्रापणं यस्यां सा। **अत्र प्रशंसार्थे मतुप् (वेत्तु)** जानातु।। **अयं मंत्रः श. १/२/१/१४-१७ व्याख्यातः।। १६।।**

**प्रमाणार्थ** **(असि)** भवति। यहां सर्वत्र व्यत्यय है। **(अवधूताः)** इस शब्द में 'अव' उपसर्ग है जिसका अर्थ निरु. (१/३) में नियन्त्रण **(दबाना)** है। **(अदितिः)** अदिति शब्द निघं. (५/५) में पद-नामों में पढ़ा है। अतः यहां 'अदिति' शब्द का अर्थ यज्ञ का ज्ञाता और पालक ग्रहण किया है। **(धिषणा)** 'धिषणा' शब्द निघं. (१/११)

में वाणी नामों से पढ़ा गया है। 'धृषेर्धिष् च संज्ञायाम् उणादि (२/८२) से 'धिषणा' शब्द सिद्ध होता है। **(पर्वती)** यहां संपदादि से क्विप् प्रत्यय है। आधिक्य अर्थ में मतुप् और 'उगितश्च' इस सूत्र से ङीप् है। **(धिषण)** यह शब्द निघं. (३/३०) में द्यावा पृथिवी के नामों में पढ़ा है। **(पार्वतेयी)** पर्वत शब्द निघं. (१/१०) में मेघ-नामों में पढ़ा है। पर्वत की सघन श्रेणी पार्वती और दुहिता के समान उसका अपत्य पार्वतेयी = वृष्टि है। 'स्त्रीभ्यो ढक्' (अ. ४/१/१२०) से ढक् प्रत्यय है। **(पर्वती)** यहां प्रशंसा अर्थ में मतुप् प्रत्यय है। इस मन्त्र की व्याख्या शत. (१/२/१/१४-१७) में की गई है। १/१६।।

**सपदार्थान्वयः हे मनुष्याः। भवन्तो योऽयं शर्म**=सुखदः सुखहेतुः **असि** भवति, **अदितिः=नाशरहितो** यज्ञस्याऽनुष्ठाता यजमानो **(असि)=अस्ति, येन रक्षः**=दुःखं (दुःखं) निवारणीयम् **अवधूतम्** विनाशितम्, **अरातयः** अदानस्वभावाः कृपणा **अवधूताः**=विनष्टा निवारणीया विचालिता हताः **च भवन्ति। यो अदित्याः=अन्तरिक्षस्य पृथिव्याश्च (त्वक्)**=त्वग्वद् असि=अस्ति भवति **त्वा**=तं (तं) यज्ञं **वेत्तु=विदन्तु।**

**येन विद्याऽऽख्येन यज्ञेन पर्वती** पर्वणं पर=बहुज्ञानं विद्यतेऽस्यां क्रियायां सा पर्वती **दिवः** प्रकाशवतः सूर्यादिलोकस्य स्कम्भनीः स्कम्भं प्रतिबद्धं नयतीति सा **पार्वतेयी** पर्वतस्य=मेघस्य दुहितेव या सा पार्वतेयी, पर्वतस्येयं घनपङ्क्तिः पार्वती, तस्याऽपत्यं दुहितेव पार्वतेयी वृष्टिः **धिषणा** धारणा वेती द्यौः **अदित्याः** प्रकाशकस्य (त्वक्)=**त्वग्वत्** त्वचति=संवृणोत्यनया सा **विस्तार्य्यते, त्वा**=तं तामीदृशीं **प्रतिवेत्तु=यथावज्जानन्तु।**

**येन सत्सङ्गत्याऽऽख्येन पर्वती**=ब्रह्मज्ञानवती पः= प्रशस्तं प्रापणं यस्यां सा **धिषणा** वाक् वेद-वाणी धृष्णोति सर्वा विद्या यया सा **प्राप्यते, तमपि प्रतिवेत्तु=जानन्तु।।** १/१६।।

**भाषार्थ :** हे मनुष्यो! आप लोग जो यह यज्ञ **(शर्म)** सुखदायक एवं सुख का हेतु **(असि)** है, **(अदितिः)** नाश रहित तथा शुभ कर्मो का पालक **(असि)** है, जिससे **(रक्षः)** सब दुख **(अवधूतम्)** विनष्ट होते हैं तथा **(अरातयः)** दान न देने वाले कंजूस लोग **(अवधूताः)** नष्ट होते हैं। और जो **(अदित्याः)** आकाश और पृथिवी की **(त्वक्)** त्वचा के समान **(असि)** है **(त्वा)** उस यज्ञ को **(वेत्तु)** जानो।

जिस विद्या नामक यज्ञ से **(पर्वती)** बहुत ज्ञान वाली **(दिवः)** प्रकाशमान सूर्यादि लोकों को **(स्कम्भनीः)** नियम में चलाने वाली **(पार्वतेयी)** पर्वत अर्थात् मेघ की पुत्री के तुल्य जो वर्षा है वह तथा **(धिषणा)** सबको धारण करने वाली द्यौ **(अदित्याः)** प्रकाशक सूर्य के **(त्वक्)** शरीर को आच्छादित करने वाली त्वचा के समान विस्तृत की जाती है **(त्वा)** उस यज्ञ को तथा उस द्यौ को **(प्रतिवेत्तु)** यथावत् जानो।

और जिस सत्संगति नामक यज्ञ से **(पर्वती)** ब्रह्म ज्ञान एवं प्रशंसनीय प्राप्ति वाली **(धिषणा)** वेदवाणी प्राप्त की जाती है उसे भी **(प्रतिवेत्तु)** यथावत् जानो।।१/१६।।

**भावार्थः** मनुष्यैर्यो विज्ञानेन सम्यक् सामग्री संपाद्या यज्ञोऽनुष्ठीयते, यश्च वृष्टि बुद्धिवर्धकोऽस्ति, सोऽग्निना मनसा च संसाधितः सूर्य प्रकाशं त्वग्वत् सेवते।। १/१६।।

**भावार्थः** मनुष्यों के द्वारा विज्ञान से भलीभांति सामग्री को सिद्ध करके जिस यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है वह वर्षा और बुद्धि को बढ़ाने वाला है, सो अग्नि और विज्ञान से उत्तम रीति से सिद्ध किया हुआ सूर्य के प्रकाश की, त्वचा के समान सेवा करता है।। १/१६।।

❑❑

# योग हमारी आध्यात्मिक विरासत

(धर्मपाल आर्य)

२१ मई को भारत समेत दुनिया के अनेक देशों ने योग दिवस के रूप में मनाया। भारत में इस दिवस को अधिक व्यापकता के साथ मनाया गया क्योंकि योग भारत की पुरातन आध्यात्मिक विरासत है। जो जहाँ की विरासत है, उसको संजोए रखना अथवा उसको प्रचारित-प्रसारित करना वारिसों का नैतिक कर्तव्य है। दुनिया में अनेक संस्कृतियां आयीं, अनेक राजे-रजवाड़े आए, अनेकों रीति रिवाजें आयीं, अनेक मत-मजहब आए और अनेक गरम-नरम शासक-प्रशासक आए और अपना-अपना करतब दिखाकर इस दुनियां से चले गए।

कुछ संस्कृतियां, कुछ राजे-रजवाड़े, कुछ रीति-रिवाजें और कुछ मत-मजहब तो ऐसे भी रहे जो जनमानस में तो क्या, वे बेचारे इतिहास में भी अपना कोई स्थान नहीं बना पाए, इसका यही कारण था कि उपरोक्त रीति-रिवाजों में मतों मजहबों में मानव कल्पित संस्कृतियों में समष्टि-हित का अभाव था तथा उनको स्वीकारने का कारण या तो तत्कालीन राजाओं के राजनीतिक वर्चस्व का भय था अथवा उनकी मजहबी कट्टरता का भय था। योग जैसी विद्याओं को मिटाने के प्रयास नहीं हुए, ऐसा बिल्कुल भी नहीं है योग समेत अनेक विधाओं को, सत्साहित्य को मिटाने के भरपूर प्रयास हुए लेकिन ये सब आज भी विद्यमान हैं, तो कुछ हमारी संस्कृति में, हमारी आध्यात्मिकता में और हमारी पुरातन आध्यात्मिक धरोहर योग जैसी विधाओं में कुछ तो जादू रहा होगा जैसा कि किसी कवि ने ठीक ही लिखा है-

**यूनान, रोम, मिस्र मिट गए सभी जहाँ से,**
**बाकी मगर अभी है, नामो निशाँ हमारा।**
**शायद कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,**
**सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा।।**

यह सब भारत की आध्यात्मिकता एवं सांस्कृतिक प्रभावों का ही परिणाम है जिसके समक्ष आज भी विश्व नतमस्तक है।

यद्यपि जिस योग को आज विश्व योगदिवस के रूप में मना रहा है, वह उसका समग्र रूप नहीं है। समग्र रूप है- **"योगश्चित्तवृत्ति निरोध"।** चित्त की वृत्तियों को नियन्त्रित करना योग कहलाता है। चित्तवृत्तियों पर निरोध (नियन्त्रण) कैसे हो सकता है, तो आचार्य पतंञ्जलि कहते हैं-**"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"।** अर्थात् चित्तवृतियों पर नियन्त्रण अभ्यास और वैराग्य से हो सकता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग हैं। इनका समग्र रूप ही योग है। आज यदि दुनियाँ ने आसन प्राणायाम के रूप में योग को अपनाया है तो मैं कह सकता हूँ कि चकाचौंध विषयवासना तथा भोगवाद के मकड़जाल में फंसे पाश्चात्य राष्ट्रों के लिए सौभाग्य का संकेत है। यदि दुनियां ने योग को समग्रता के साथ स्वीकार कर लिया अथवा यूँ कहूँ कि अपनी जीवन शैली को पूर्ण रूपेण योग के सांचे में ढाल लिया तो ये संसार समस्त पापों से मुक्त हो जाएगा तथा एक अपूर्ण व अलौकिक आनन्द की अनुभूति करेगा, इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है।

एक महानुभाव ने मुझसे प्रश्न करते हुए कहा कि योग क्यों करना चाहिए? योग से क्या होता है? उनके उपरोक्त प्रश्नों को सुनकर मुझे योगेश्वर श्रीकृष्ण की दो उक्तियाँ याद आयीं, जिन्हें कभी उन्होंने अर्जुन को उपदेश रूप में कहा था। **"युज्याद्योगमात्मविशुद्धये"।** अर्थात् आत्मशुद्धि के लिए योग किया जाता है अथवा किया जाना चाहिए। **"योगो भवति दुःखहा"।** अर्थात् योग त्रयतापों (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखों) को हरने वाला अथवा दूर करने वाला होता है।

त्रयतापों को मिटाने वाला योग, कैवल्य भाव को प्राप्त कराने का साधन योग, मानसिक, आत्मिक, आध्यात्मिक शक्ति देने का साधन योग, जीवन और मृत्यु के रहस्यों को सुलझाने वाला योग, आत्मा-परमात्मा के साक्षात्कार का माध्यम योग तथा ऐहिक व पारलौकिक शान्ति देने का साधन योग यदि मजहबी मानसिकता व अवसरवादी राजनीति के दल-दल में घसीटा जाता है, तो यह दुर्भाग्य योग का अथवा मेरा और आपका ही नहीं, अपितु समस्त मानव जाति का है। वर्तमान केन्द्र सरकार ने कुछ इच्छाशक्ति दिखाई है, तो उसका परिणाम यह हुआ कि कई राष्ट्रों ने योग की महत्ता को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार किया है। एक अनुमान अनुसार योगदिवस के उपलक्ष्य में १६ देशों में ३० हजार जगहों पर लगभग २० करोड़ लोगों ने योगाभ्यास किया। २० करोड़ में से सबसे अधिक लगभग पचास प्रतिशत अर्थात् दस करोड़ लोगों ने भारत में जबकि भारत के बाद सबसे अधिक लगभग तीन करोड़ लोगों ने अमेरिका में योगाभ्यास किया। इसके अतिरिक्त लगभग ४७ मुस्लिम राष्ट्रों ने भी योग को मान्यता प्रदान की है, जिसे एक विशेष उपलब्धि माना जा सकता है।

वेद क्या, दर्शन-शास्त्र क्या और उपनिषद् सभी कहीं न कहीं योग को ही परिभाषित कर रहे हैं। सामवेद में एक मंत्र है जो योग के महत्व और उसकी आवश्यकता को अभिव्यक्त करता है। मन्त्र है-

**योगे योगे तवस्तरं, वाजे वाजे हवामहे।**
**सखाय इन्द्रमूतये।**

अर्थात् अपने उपासकों की वृद्धि करने वाले, अतिशयेन सुख देने वाले परमात्मा को समस्त विघ्न बाधाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए तथा अपनी रक्षा के लिए योग अवस्था में रहते हुए अर्थात् योग करते हुए हम सब मित्रभाव से पुकारते हैं अथवा योगसाधना करते हुए हम सब उस ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करते हैं। वेद में परमेश्वर की साधना का, उसकी उपासना का साधन योग को ही माना है। मानसिक पवित्रता, बौद्धिक सबलता, शारीरिक आरोग्य और यदि आत्मिक निर्भरता या क्षमता प्राप्त करनी है तो उसका एकमात्र साधन केवल और केवल योग ही है। इसके अतिरिक्त **"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"** अर्थात् दुःख के सागर को पार करने का योग के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है। समाज व राष्ट्रहित के कार्य तब तक सफलतापूर्वक आगे नहीं बढ़ते अथवा यह कहूँ कि उनका पूर्ण प्रभावी प्रचार-प्रसार तक तब नहीं होता, जब तब उनको राजनीतिक प्रोत्साहन न मिले। किसी भी कार्य के प्रचार-प्रसार के लिए राज व्यवस्था में रुचि व दृढ़ इच्छा शक्ति होना आवश्यक है।

मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि जब योग को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित और प्रसारित करने के देश में राजनीतिक स्तर पर प्रयास किए जा रहे थे, तब इसी देश के कुछ कट्टरवादी मानसिकता के लोग योग का विरोध कर रहे थे और कुछ राजनीतिक दल उनका कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन कर रहे थे लेकिन अन्ततः योग की यशपताका दुनियां में फहरी। दुनियां में योग के प्रति श्रद्धा लेकिन हमारे देश में जिन पर मजहबी जुनून सवार था उनके मन में अश्रद्धा, दुनियां में योग के प्रति उत्साह लेकिन यहाँ कुछ लोगों के मन में उदासीनता, दुनिया में योग का समर्थन किन्तु हमारे देश में कुछ सिरफिरों द्वारा विरोध, इतनी विडम्बनाओं, विरोधों और विषमताओं के रहते हुए योग यदि दुनियां के जीवन की शैली बनता है तो हमारे लिए यह अवश्य ही गौरवपूर्ण अनुभूति है। **युजिर् योगे** (रुधादिगण) **युज् समाधौ** (दिवादिगण) तथा **युज्** (पृच्) **संयमने** (चुरादिगण) इत्यादि धातुओं से सम्पन्न यह योग शब्द ही अपने आप में हम सबके लिए एक बहुत बड़ा उपदेश है। जोड़ना, समाधि प्राप्त करना और संयम करना ही तो योग कहलाता है। सुख-शान्ति यदि है तो जोड़ने में ही तो है, तोड़ने में कभी नहीं, सुख शान्ति यदि कहीं है तो वो समाधि अर्थात् सच्ची आस्तिकता में ही तो है नास्तिकता में तो कभी भी नहीं है और

शान्ति व सुख यदि कहीं है तो वह संयम में ही है असंयम में तो कभी भी नहीं है।

यदि गम्भीरता से विचार करें तो योग में आध्यात्मिकता के साथ-साथ सामाजिकता का, पवित्रता का, सामञ्जस्य का, सफलता का और सर्वाङ्गीण उन्नति का न केवल सन्देश छिपा है, अपितु उसका साधन भी वर्णित है। योग का एक अर्थ हमें समाधि (आध्यात्मिकता) का सन्देश, योग का दूसरा अर्थ हमें जोड़ना (सामाजिकता) का सन्देश और तीसरा योग का सन्देश यह है कि हम जीवन में संयम रखने का प्रयास करें, पुरुषार्थ करे। अतः मैं कह सकता हूँ कि योग प्राणिमात्र के लिए वरदान है और एक सुयोग है।

हमारे यहाँ समस्या योग में नहीं है, अपितु कुछ लोगों की मानसिकता में समस्या है। कुछ लोग योग को योग की दृष्टि से नहीं, अपितु मजहबी नजरिए से देखते हैं जिसके कारण उन्हें जो समस्या उन्हें **"वन्दे मातरम्"** कहने में होती है, उससे अधिक समस्या उनको योग से होती है व उसकी विधि सूर्यनमस्कार से होती है। ऐसे लोग योग को व उसकी क्रियाओं को अपने सम्प्रदाय के विपरीत मानते हुए उसका विरोध करते हैं। उनके इस विरोध के समर्थन में वे राजनीतिक दल और राजनीतिक लोग शामिल हो जाते हैं, जिन्हें उस वर्ग का वोटबैंक हासिल करना है। संवैधानिक अधिकार व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की आड़ में योग व वन्दे मातरम का विरोध हमारी राजनीति की नाक के नीचे निश्चिन्तता के साथ फलता- फूलता है। संकुचित मानसिकता जहाँ होती है, वहाँ अच्छे कार्यो का भी विरोध होना यद्यपि स्वाभाविक होता है पुनरपि यदि हमारी राजव्यवस्था दृढ़ इच्छाशक्ति वाली है तो फिर इस प्रकार के विरोधों का कोई महत्व नहीं होता। मजबूत राजव्यवस्था के सामने इस प्रकार की वृत्तियाँ समाप्त ही हो जाती हैं।

इस सन्दर्भ में मुझे रामायण का श्लोक याद आ रहा है, जिसे जाबालि मुनि की बात के प्रत्युत्तर में श्रीराम ने कहा था-

**"कामवृत्तस्त्वयं लोकः कृत्स्न समुपवर्तते।**
**यद्वृत्ता सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः"।।**

अर्थात् प्रजा राजा के चरित्र का अनुकरण स्वाभाविक रूप से करती है, जो चरित्र अथवा व्यवहार राजा का होता है उसी चरित्र अथवा व्यवहार के सांचे मे प्रजा भी अपने आपको ढालने का प्रयास करती है। मुझे यदि सही स्मरण है तो पिछले ६ वर्षों में योग को जितना राजनीतिक प्रोत्साहन मिला है और उसके कारण योग के प्रति बदले दृष्टिकोण के कारण योग को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जो अभूतपूर्व ख्याति मिली है उससे पूर्व न तो योग को इतना राजनीतिक प्रोत्साहन मिला और न ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इनती ख्याति मिली। इसका मुख्य कारण है कि समाज के साथ-साथ हमारी राजव्यवस्था ने योग के प्रचार-प्रसार में अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति का प्रयोग किया। **समाज में इच्छा शक्ति व शासन में दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति ही किसी कार्य को सफलता के शिखर तक ले जा सकती है।** संसार में अब तक जितने भी आविष्कार हुए या भविष्य में जितने भी आविष्कार होंगे उनमें योग सर्वोपरि था, है और रहेगा क्योंकि जितने भी आविष्कार हैं वे केवल मनुष्य के सांसारिक जीवन को समृद्ध बनाने वाले हैं या यह कहूँ कि मनुष्य को सांसारिक सुख देने के साधन हैं किन्तु योग महर्षि पतञ्जलि का एक ऐसा आविष्कार है जो कि मनुष्य को आध्यात्मिक, आत्मिक मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से तो समृद्ध बनाता ही है, साथ-साथ सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक व सार्वजनिक जीवन को सफल व सक्षम बनाने के उपाय भी सूत्र रूप में प्राचुर्येण उपलब्ध कराता है। योग के आठ (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) अङ्गों में से यदि विश्व ने उस (योग) के दो अङ्गों (आसन और प्रणायाम) को अपनाया है तो मैं कह सकता हूँ कि ये दो अङ्ग विश्व के योग की ओर बढ़ने के लिए दो कदम हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि भौतिक

संसाधनों से दुनियां जिस शान्ति को, जिस सुख व सफलता को पाना चाहती है उन्हें प्राप्त करने के लिए भौतिक साधन तो अधूरे हैं ही उन साधनों से उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले प्रयास भी अधूरे हैं। उस प्रयास में पूर्णता तभी आएगी, जब दीर्घकालीन सुख-शान्ति पाने के लिए भौतिक साधनों के साथ जब योग भी जुड़ जाएगा। मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ, पूरा विश्व योगपथानुगामी बने ताकि विश्व से अशान्ति, अव्यवस्था, अराजकता, अन्याय, असमानता और आडम्बरों के मकड़जाल को छिन्न-भिन्न कर विश्व में शान्ति व्यवस्था, सुराज, ज्याम, समानता और सत्य और संद्धर्म की स्थापना की जा सके, क्योंकि योग में ही उद्योग है, योग में उपयोग है, योग में ही संयोग हैं, योग में ही उपयोग है, योग में ही सुयोग है तभी तो श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को कहते हैं-

**"योगः कर्मसु कौशलम्"।** अर्थात् योग से कर्म में कौशल प्राप्त होता है, फिर चाहे वो उद्योग हो, चाहे सुयोग हो, चाहे उपयोग हो, चाहे संयोग हो और प्रयोग हो जीवन का हर पहलू योग के बिना अपूर्ण है। यहाँ यह भी कहना अत्यावश्यक है कि **यदि योग के आठों अंगों का प्रचार-प्रसार हो जाएगा, तो पूरा विश्व सुखी हो जाएगा। इसमें कोई शक और सन्देह नहीं है।**

❑❑

पृष्ठ २ का शेष

जा रही है। इससे बचाव के रास्ते ढूँढने होंगे।

पर्यावरण प्रदूषण एक ऐसी समस्या है जिससे कोई भी प्राणी बच नही सकता। धनवान खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने आदि में बड़प्पन दिखाकर गर्वित हो सकता है, मगर पर्यावरण की मार से बचने का रास्ता उसके पास नहीं है। पर्यावरण हम सबकी साझी विरासत है, जिसे कुछ सुविधाभोगी लोग बिगाड़ कर सम्पूर्ण मानवता के लिए ही नहीं, प्राणिमात्र के लिए घातक बना डालें तो यह एक बहुत बड़ा पाप होगा! लेख के प्रारम्भ में धर्म और ईश्वर को लेकर जो बातें लिखी हैं, वह इसलिए आवश्यक है कि धर्म पूजा पद्धति और मन्दिर आदि धर्मस्थलों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि धर्म हमारे जीवन की हर छोटी-बड़ी क्रियाओं से जुड़ा है। हमारा हर वह कार्य जो किसी न किसी रूप में किन्हीं निर्दोष मनुष्यों व प्राणियों के दुःख का कारण बनता है, निश्चित रूप से वह अधर्म है, पाप है। हमारे जिस कार्य से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भी किन्हीं मनुष्यों व प्राणियों को सुख लाभ मिला हो निश्चित रूप से हमारा वह कर्म धर्म है, पुण्य है। इससे अलग धर्म-अधर्म की जितनी मान्यताएँ हैं, वे सब कल्पनाएँ हैं। आंकड़ों की बात करें तो प्लास्टिक कचरे के कारण प्रति वर्ष दस करोड़ से अधिक जलीय जन्तु मर जाते हैं। हम पल्ला झाड़कर कह देंगे कि इसके लिए हम जिम्मेदार नहीं है, मगर ईश्वरीय व्यवस्था आपकी-हमारी मान्यताओं से नहीं चलती। निःसन्देह प्रत्येक व्यक्ति जो किसी भी रूप में प्लास्टिक-कचरे में वृद्धि का कारण बनता है वह उन सबके दुःख, रोग और मृत्यु- रूप पाप का भागीदार है। इस पाप से बचना है तो प्लास्टिक के प्रयोग से बचना ही होगा। हम सब्जी या घर का कोई सामान लेने जाएँ पर घर पर कपड़े के कुछ थैले बनवा कर रखें, और उन्हीं का प्रयोग करें। कोल्ड ड्रिंक तो वैसे भी स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध हो चुकी है। मिनरल वाटर के नाम पर जो बोतल बन्द जल मिल रहा है, उसमें भी पोषक तत्वों का अभाव पाया गया है। कुल मिलाकर देखें तो इन बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अपने स्वास्थ्य की तनिक भी चिंता नहीं है। हमें सचेत होना ही होगा। विज्ञान और व्यापार जगत के मठाधीश अपनी बौनी सोच जो कि तत्काल लाभ के लिए उतावली रहती है, उस सोच के कारण वे तो मरेंगे ही, मगर उनके चमकीले सुविधाजनक दिखने वाले जाल में फँसकर हम सर्वनाश का पाप लेकर न मरें, इसके लिए हमें भारतीय जीवन मूल्यों से जुड़कर दूर तक देखना-सोचना होगा।

❑❑

# ऐसा क्या किया सावरकर ने?

(राजेशार्य आट्टा,मो0:-०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! देश धर्म की सुख समृद्धि के लिए त्याग करने व बलिदान देने वाले लोग थोड़े ही होते हैं। बहुत से तो उनके कार्यों की आलोचना करने वाले होते हैं। आलोचना की दिशा सकारात्मक भी होती है और नकारात्मक भी। नकारात्मक आलोचना हमेशा ही राष्ट्र की प्रगति में बाधक रही है। एक षड्यन्त्र के अन्तर्गत देश में उसी का प्रचार अधिक हो रहा है। इसी फरवरी मास में आतंकवादियों ने हमारी सेना के जवानों पर धोखे से (पुलवामा में) हमला कर लगभग चालीस जवानों को शहीद कर दिया। पूरे देश में शोक और रोष था। घटना के अगले दिन ही राजनीति शास्त्र के एक प्राध्यापक मुझसे बोले- पाकिस्तान ठीक कर रहा है। मैंने उन्हें हैरानी से देखते हुए कहा- 'कैसे?' तो वे बोले- "भारत ने भी तो पाकिस्तान को तोड़कर १९७१ ई० में बंग्लादेश बनवाया था। वह तो बदला लेगा ही।" मैंने कहा- मित्र! आप और पीछे जाइये, १९६५ ई० में पाकिस्तान ने ही तो भारत पर आक्रमण किया था और १९४७ ई० में जन्म लेते ही पाकिस्तान ने भारत माता का खून पीना शुरू कर दिया था, तब तो बंग्ला देश नहीं बना था। प्राध्यापक महोदय मौन हो गये। पर मैं इस विश्लेषण से चिन्तित हो गया कि जब देश के निर्माताओं का यह चिन्तन है तो विद्यार्थियों की विचारधारा कैसी बनेगी!

ऐसे लोगों के विषय में ही महान क्रान्तिकारी कामरेड शचीन्द्रनाथ सान्याल ने अपनी पुस्तक 'बन्दी जीवन' में लिखा है- "विप्लवियों और समालोचकों में भेद यही है कि विप्लवी (क्रांतिकारी) लोगों की अपने आदर्श पर अटूट श्रद्धा है, इसलिए उन्होंने अद्भुत निष्ठा के साथ अपने आदर्श की ओर जाने वाले पथ पर चलते हुए जीवन बिताया है और इन समालोचक लोगों ने आराम चौकी पर बिताया है और इन समालोचक लोगों ने आराम चौकी पर बैठकर समालोचना करने को ही जीवन का पेशा बना डाला है और बहुतों का तो यह समालोचना करना ही जीविका अर्जन करने का मुख्य अवलम्ब हो गया है।"

शचीन्द्रनाथ सान्याल पहली बार लगभग चार वर्ष (१९१६-१९२० ई०) अण्डमान (काला पानी) में बिताकर मुक्त हुए, तब वीर सावरकर वहीं यातनाएँ भोग रहे थे। अपने साथियों को उस संकटपूर्ण स्थान में असहाय अवस्था में छोड़ते हुए उन्हें मुक्ति के आनन्द के साथ असहनीय पीड़ा भी हो रही थी। उन्होंने सबसे यह वादा किया कि देश में पहुँचते ही मैं उन लोगों को छुड़ाने के लिए भरसक प्रयत्न करूँगा। भारत की भूमि पर कदम रखते ही (फरवरी १९२० के अंत में) वे सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के दामाद व कलकत्ता हाई कोर्ट के प्रमुख वकील वी.सी. चटर्जी से मिलने गये। वी० सी० चटर्जी ने उन्हें उनके द्वारा अण्डमान से लिखी वह चिट्ठी दिखाई, जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि ब्रिटिश सरकार भारतवासियों को यथार्थ में यह मौका देती है कि हम अपने देश की भलाई के लिए जो ठीक समझें उसे कर सकें तो गुप्त षड्यन्त्र के द्वारा खून खराबी के रास्ते से आग को लेकर हम खिलवाड़ क्यों करें।' इसी चिट्ठी ने शचीन्द्रनाथ सान्याल की मुक्ति का मार्ग खोला था। चिट्ठी दिखाकर चटर्जी साहब बोले- "अब गुप्त षड्यन्त्र का रास्ता त्याग दो, इसी आशा से और इसी विश्वास से सरकार ने तुम्हें छोड़ दिया है।"

यह सुनकर शचीन्द्रनाथ बोले- "विनायक दामोदर सावरकर ने भी तो अपनी चिट्ठी में ऐसी ही भावना प्रकट की थी जैसी कि मैंने की है तो फिर सावरकर को क्यों नहीं छोड़ा गया और मुझे ही क्यों छोड़ा गया? मैं तो यह समझता हूँ कि मेरे छूटने और सावरकर जी

के न छूटने में दो बातें हैं। एक तो यह कि बंगाल के जनमत ने मेरे जैसे राजनीतिक बन्दियों को छुड़ाने के लिए प्रबल आग्रह किया था। राजबन्दियों की रिहाई के मूल में यही बात बहुत बड़ी थी। लेकिन महाराष्ट्र में उतना तीव्र आन्दोलन नहीं हुआ जैसा कि बंगाल में हुआ। दूसरी बात सावरकर जी के न छूटने में यह थी कि सावरकर जी और उनके दो चार साथियों की गिरफ्तारी के बाद महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी आन्दोलन समाप्त-सा हो गया था। इसलिए सरकार को यह डर था कि यदि सावरकर इत्यादि को छोड़ दिया जाय तो कहीं ऐसा न हो कि फिर महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भ हो जाए। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि सावरकर जी के द्वारा इंग्लैंड में एक अंग्रेज की हत्या हुई थी। इस पर ब्रिटिश सरकार को विशेष क्रोध था।. ..”

इस पर चटर्जी साहब बोले कि बात असल में यह है कि मरहठों के ऊपर अंग्रेजों का बिल्कुल विश्वास नहीं है। बंगाली जैसा कहेंगे वैसा करेंगे, लेकिन मरहठे ऐसा कभी नहीं कर सकते।' सान्याल ने कुछ लज्जा महसूस की और चटर्जी के ब्रिटिश विश्वास पर हँसे। नारायण सावरकर को साथ लेकर अपने अण्डमान के साथियों की मुक्ति के लिए शचीन्द्रनाथ कांग्रेस के बड़े से बड़े नेता से मिले, कांग्रेस के हर सम्मेलन में इस विषय को लेकर पहुँचे। मदन मोहन मालवीय, जवाहर लाल नेहरू, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल आदि से मिले पर गाँधी जी के आन्दोलनों से प्रभावित जनता ने क्रान्तिकारियों के प्रति उदासीनता दिखाई, तो शचीन्द्रनाथ ने सशस्त्र क्रान्ति का संकल्प लेकर उत्तर भारत का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी दल खड़ा किया। भगतसिंह आदि व रामप्रसाद बिस्मिल आदि सभी उसी दल के सदस्य थे। काकोरी मामले में पुनः काला पानी की सजा पाकर लगभग दस वर्ष बाद भारत आये महान क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल ने कामरेड होते हुए भी कम्यूनिस्ट विचारधारा के नास्तिकवाद और भोतिकवाद के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया, लेनिन व मार्क्स के गीत नहीं गाये, आज के कम्युनिस्टों की तरह वीर सावरकर और भाई परमानन्द को कायर कहकर उपेक्षित नहीं किया।

आज वीर सावरकर के जिस माफीनामे को उछाल उन्हें 'कायर' प्रचारित करने वाले लोगों से पूछना चाहिए कि उन्होंने देश के लिए सावरकर जैसा कौन सा काम किया है? यदि यह माफीनामा यथार्थ होता, तो वीर भगत सिंह, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जैसे महान देशभक्त सावरकर के प्रति सम्मान प्रकट कर उनसे मार्ग दर्शन न लेते। भगतसिंह ने 'किरती' (मार्च १९२८) में मदन लाल ढींगरा के प्रसंग में लिखा है- “कहते हैं कि एक दिन रात को श्री सावरकर और मदनलाल ढींगरा बहुत देर तक मशविरा करते रहे।.... वह मिलाप कितना सुन्दर, कितना महिमामय था! हम दुनियादार क्या जानें, मौत के विचार तक से डरने वाले हम कायर लोग क्या जानें कि देश की खातिर कौम के लिए प्राण दे देने वाले वे लोग कितने ऊँचे, कितने पवित्र और कितने पूजनीय होते हैं।''

१ जुलाई १९०९ को जब मदन लाल ढींगरा ने कर्जन वायली को गोली मारकर ढेर दिया, तो उस विषय में भगतसिह ने लिखा है- “सब लोग उन्हें : (ढींगरा को) जी भर कर गालियाँ देने लगे।... बड़े-बड़े भाषण (भारतीयों के) हुए। बड़े-बड़े प्रस्ताव पास हुए। सब उनकी निन्दा में। पर उस समय भी एक सावरकर वीर थे, जिन्होंने खुल्लम खुल्ला उनका पक्ष लिया।..”

लाला लाजपत राय ने ऑल इण्डिया पॉलिटिकल सफररर्स कांफ्रेंस में सभापति के आसन से कहा था- इन राजबन्दियों में ऐसे आदमी (वीर सावरकर, भाई परमानन्द आदि) भी हैं जिनके जूते के फीते खोलने लायक यहाँ के लाट साहब भी नहीं।

ऐसे महान बलिदानी सावरकर ने जिस देश, काल, परिस्थिति में अंग्रेजों की जेल से छूटने के लिए जिस

भावना से प्रार्थनापत्र लिखा, उस पर एक दृष्टि डालते हैं-

अण्डमान की जेल भारत भूमि से सैकड़ों मील दूर समुद्र के बीच में द्वीप पर बनी थी। वहाँ खूँखार अपराधी रखे जाते थे। देशभक्त भी अंग्रेजों की नजर में खूनी हत्यारे थे। अतः उन पर अत्याचार करने के लिए निर्दयी अधिकारी लगाए जाते थे। कोल्हू में बैल की जगह जुतकर नारियल का तेल निकालना पड़ता था। तेल पूरा न होने पर बेंत लगते थे। उस कोल्हू को देखकर बड़े खूँखार बलवानों के भी पसीने छूटते थे, जिससे बचने के लिए सामान्य बन्दी भी औषधियाँ खा-खाकर नकली बीमारियाँ मोल लेने को तैयार रहते थे; स्वयं घाव बनाकर महीनों तक उसे सड़ाते रहते थे। और तो और स्वयं को पागल सिद्ध करने के लिए लोग अपने मुँह पर विष्ठा (टट्टी) का लेप तक कर लेते थे। कुछ तो सबके सामने ही उसे खा भी लेते थे।

उपेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'आपबीती' में लिखा है- "हमसे पूर्व सन् १८५७ के राज्य क्रांतिकारियों से लेकर जो भी आजीवन कारावास पाकर अण्डमान आते रहे, उनमें से एक भी जीवित स्वदेश न लौट सका था। यह बात जब जेल में कठिन से कठिन काम करते समय मेरे मन में आती तो जी चाहता कि रस्सी का फंदा गले में डालकर आत्महत्या कर लूँ और इस कर्म भोग (कष्टों) से मुक्ति पा लूँ।"

माणिकटोला बम काण्ड में दस वर्ष की सजा पाए क्रांतिकारी युवक इन्दुभूषण राय ने अंडमान की यातनाओं से तंग आकर आत्महत्या कर ली। उल्हासकर दत्त को असहनीय यातनाओं ने पागल ही बना दिया था। वह दस वर्ष उसी अवस्था में रहा। उसके बाद मद्रास में पागलों के अस्पताल में रखा गया तथा वहीं से मुक्त किया गया। भानसिंह लाठी-डण्डों की पिटाई और क्षयरोग के कारण शहीद हो गये, आर्यवीर रामरक्खा हुतात्मा बन गये, सतीशचन्द्र पगाल होकर अन्त में मृत्यु का वरण कर गये। कितने ही रामचरणलाल फाँसी को जीवन मुक्ति का साधन मानने लगे थे। रामचरण लाल शर्मा ने 'काला पानी का ऐतिहासिक दस्तावेज' में अण्डमान जेल के अत्याचारों का विस्तार से वर्णन किया है।

वीर सावरकर ने लिखा है कि उनके बड़े भाई बाबा राव-गणेश सावरकर (२८ फरवरी १९०९ को राजसत्ता के विरुद्ध भड़काने वाला साहित्य लिखने के आरोप में बन्दी बनाकर काला पानी भेजा गया था) को बचपन से ही आधाशीशी का रोग था। सुबह उठते ही उन्हें कोल्हू में जोत दिया जाता। दिन बढ़ने के साथ उनका दर्द बढ़ता जाता। दर्द असहनीय होने पर वे दीवार पर तड़ातड़ सिर की टक्करें मारते। डाक्टर चाहते हुए भी उन्हें अस्पताल में नहीं ले जा सका, क्योंकि जेलर बारी का अत्याचारी शासन जुल्म ढा रहा था। जिसके कारण गणेश सावरकर पित्ताशय के भीषण दर्द, खूनी पेचिश, खाँसी व ज्वर आदि से पीड़ित होकर खड़े होने में भी असमर्थ हो गये थे।

नारियल का तेल निकालने के लिए निरन्तर कोल्हू में फिरते रहने से चक्कर आने लगते थे। एक दिन लू चल रही थी। वीर सावरकर कोल्हू चलाते हुए बेहोश हो गये। होश में आने पर आत्महत्या करने का विचार आता रहा। जिस शरीर का उपयोग राष्ट्र को स्वाधीन करने के लिए होना था, अब वह अंग्रेजों की बेगार करते करते मिट्टी के मोल जा रहा था। उस भयंकर नरक में अमानवीय यातनाएँ झेलते हुए जिसे पचास साल का लम्बा समय बिताना हो, उसके अनुभव को स्वतन्त्र वायु में आराम से अपने घर बैठकर आलोचना करने वाले लेखक क्या जानें।

सन् १९१० में पहली बार इंग्लैण्ड में गिरफ्तारी के बाद से भारत की अनेक जेलों में कष्ट उठाकर अण्डमान की जेल में बन्द रहने, शाीरीरिक व मानसिक पीड़ा सहने तथा अपौष्टिक व दूषित भोजन के कारण सावरकर के शरीर में अनेक बीमारियाँ पैदा हो गईं। अन्य बन्दियों की तरह उन्हें न तो अस्पताल में दाखिल किया गया और न ही रोगी वाला आहार दिया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध समाप्ति पर (१९१८ ई०) था। सावरकर का स्वास्थ्य बुरी तरह गिर रहा था। निरंतर १०० डिग्री बुखार रहने तथा पेचिश के कारण शरीर हड्डियों का ढांचा बन चुका था। अंत में बिगड़ती हालत देखकर अधिकारियों ने जेल की कोठरी से निकालकर अस्पताल में भर्ती कराया। आठ वर्षों में पहली बार अस्पताल भेजा गया था। इसका कारण भारत के समाचार पत्रों में जेल की दुव्यर्वस्था, राजनैतिक बन्दियों का उत्पीड़न तथा सावरकर के गिरते स्वास्थ्य के समाचारों का प्रचारित होना था। ज्वर उतारने के लिए लगातार 'क्विनीन' की गोलियाँ देने से खूनी पेचिश होने लगी। जिससे पाचन क्रिया पूर्णतः नष्ट हो गई। टी०बी० की आशंका मान उनकी चिकित्सा होने लगी। एक वर्ष तक सावरकर जेल के अस्पताल में रहे। पुनः एकान्त कोठरी में भेज दिया गया। यहाँ भी वे ज्वर व खूनी पेचिश से जूझते रहे।

सामान्यतः बन्दियों को ५ वर्ष में एक बार अपने परिजनों से मिलने की सुविधा प्राप्त थी, पर सावरकर के परिवार को अनेक आवेदन व सिफारिशों के बाद यह सुविधा आठ वर्षों बाद प्राप्त हुई, तब तक उनकी भाभी यशुबाई (गणेश सावर की पत्नी) अपने जीवन की आहुति दे चुकी थी। उस दुर्घटना से अनजान ये दोनों भाई उस महान आत्मा को दो बूंद श्रद्धांजलि भी नहीं दे सके। ऐसी परिस्थिति में जीने वाले लोग ही उनके बलिदान की कीमत जान सकते हैं। ऐसी दुरवस्था में उस नरक से मुक्ति के लिए निवेदन करने से सावरकर का बलिदान नगण्य नहीं हो सकता। यदि अंग्रेजों ने उनके निवेदन पर विश्वास कर उन्हें मुक्त कर दिया होता, तो क्या यह सम्भव नहीं कि शचीन्द्रनाथ सान्याल की तरह उन्होंने भी क्रान्तिकारी दल खड़ा कर दिया होता। देखिये-

एक दिन सुपरिटेन्डेन्ट ने सावरकर के सामने उनके छोटे भाई नारायण सावरकर को डरपोक कहा, तो उन्होंने निर्भीकता से कहा- ''वह डरपोक कहाँ रहा? शत्रु को मात देकर उसके चंगुल से छूटने की युक्ति करना भी तो शूरवीरों का कर्त्तव्य है।" ऐसा मुँहतोड़ उत्तर सुनकर सुपरिटेन्डेन्ट चौंक गया और चुपचाप खिसक गया।

अण्डमान जेल में चौथी हड़ताल के समय पंजाब के वीर राजपूत युवक पृथ्वीसिंह आजाद पूरे छह माह तक बिना खाये, बिना कपड़े पहने और बिना एक शब्द बोले डटे रहे। उनका शरीर हड्डियों का ढाँचा बनकर रह गया था। आखिर एक दिन सावरकर उनके पास जाने में सफल हो गये। सावरकर ने उन्हें महान् स्वातंत्र्य सेनानी तथा अकबर से जूझते रहने वाले हिन्दू सूर्य महाराणा प्रताप की कथा सुनाई कि किस प्रकार अनेक बार उन्हें रणनीति के अनुरूप युद्ध के मैदान से चार-पाँच मील तक पीछे हटने को विवश होना पड़ता था। किस प्रकार हल्दी घाटी युद्ध में वीर शिरोमणि प्रताप को दुश्मन से जूझते हुए इधर-उधर जाने को विवश होना पड़ा था। परिस्थिति के अनुरूप कुछ पीछे हटना भी शूरता का ही लक्षण है।' यह सुनकर पृथ्वी सिंह सहमत हो गया।

शचीन्द्रनाथ सान्याल ने नारायण सावरकर के साथ मिलकर अण्डमान के राजबन्दियों की मुक्ति के लिए हस्ताक्षर अभियान चलाया। उसी के परिणामस्वरूप बहुत से राजबन्दियों की मुक्ति होनी थी। इन मुक्त किये जाने वाले राजबन्दियों से इकरारपत्र पर लिखवाया जाता था।- "मैं आगे चलकर पुनः अमुक अवधि तक न राजनीति में भाग लूँगा, न राज्य क्रांति में। यदि मुझ पर पुनः राजद्रोह का आरोप सिद्ध हो जाय तो मैं पुनः आजीवन कारावास की सजा प्राप्त करने को तत्पर रहूँगा।"

वीर सावरकर ने लिखा है- इस करारपत्र पर हस्ताक्षर करने या न करने के प्रश्न पर भी राजबन्दियों में गरमागरम चर्चा छिड़ी। मेरा स्पष्ट मत था कि राष्ट्रद्रोह तथा विश्वासघात को छोड़कर नीति के अनुसार परिस्थितवश युक्ति से काम लेना ही राजनीति है। मैंने इस कथन के समर्थन में शिवाजी- जयसिंह, शिवाजी-अफजलखाँ, गुरु गोविन्दसिंह तथा भगवान श्रीकृष्ण आदि के अनेक

शेष पृष्ठ २३ पर

# आचरण के छिद्र

(डॉ0 रूपचन्द्र 'दीपक' प्रधान आर्य समाज श्रृंगारनगर, लखनऊ-२२६००५)

**यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।**
**शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।**

-यजुर्वेदः अध्याय-३६, मन्त्र-२

**पदार्थ :-** (यत्) जो (मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की, (हृदयस्य) अन्तःकरण की (छिद्र) न्यूनता (वा) वा (मनसः) मन की (अतितृण्णम्) व्याकुलता है (तत्) उसको (बृहस्पतिः) ईश्वर (मे) मेरे लिए (दधातु) पूर्ण करे। (यः) जो (भुवनस्य) संसार का (पतिः) रक्षक है, वह (नः) हमारे लिए (शम्) कल्याणकारी (भवतु) होवे।

**नेत्रों के छिद्र**

नेत्रों के कुछ छिद्र निम्नलिखित हैं -

(१) दृष्टिदोष अर्थात् ठीक से न देख पाना।

(२) जिस वस्तु वा मनुष्य पर दृष्टि पड़े, उसे भीतर तक न समझ पाना।

(३) किसी पर कुदृष्टि डालना।

(४) नेत्रों में स्नेह का अभाव। यह बहुत बड़ी कमी है। इसे दूर करने हेतु वेद में प्रार्थना की गयी है -

**मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।**

(यजुर्वेदः अध्याय-३६, मन्त्र-१८) अर्थात् मैं सब प्राणियों को स्नेह की दृष्टि से देखूँ।

(५) **उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचम्।** (ऋग्वेदः मण्डल-१०, सूक्त-७१, मन्त्र-४)

यदि हम नेत्रवान् होकर भी शत्रु-मित्र की पहचान न कर पाये, अपने सामने बाधारूप पड़े क्षणिक सुख को अनदेखा न कर पाये और धर्म-अधर्म के मध्य खिंची सूक्ष्म रेखा को न देख पाये, तो फिर हम कैसे नेत्रवान् हैं?

**हृदय के छिद्र**

भौतिक हृदय मनुष्य के शरीर का एक अंग है, जो रक्त के शोधन एवं परिभ्रमण का कार्य करता है। मन्त्र में बताया गया हृदय कोई दिखायी देने वाली वस्तु नहीं, अपितु भावों का केन्द्र है। इसे अन्तःकरण भी कह देते हैं। वैसे मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार के समूह को अन्तःकरण कहते हैं किन्तु बोल-चाल में हृदय, मन एवं अन्तःकरण का एक-दूसरे के लिए प्रयोग होता आ रहा है। इस भावात्मक हृदय के मुख्य तीन दोष हैं :-

**परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।**
**वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्।।**

(मनुस्मृति : अध्याय-१२, श्लोक-५)

अर्थात्-

(१) **चोरी।** कर्म से चोरी करना तो शारीरिक दोष है। किन्तु इससे पहले हृदय में चोरी का भाव उत्पन्न होता है। ऐसा भाव रखना ही हृदय से चोरी कहलाता है।

(२) **अनिष्ट चिन्तन**; किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और शत्रुता का भाव रखना। इस बुरे भाव के कारण मनुष्य मनुष्य का शत्रु बना हुआ है। वह अन्यों को दुःख पहुँचाता है और अपने हृदय में धधकती अग्नि के कारण स्वयं भी दुःख पाता रहता है।

(३) **मिथ्यानिश्चय**; किसी के प्रति भूल कर बैठना वा गलतफहमी रखना। संसार में इसके कारण अनेक कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं। अनेक बार यह देखा गया है कि गलतफहमी के कारण दो व्यक्तियों के मध्य कटुता उत्पन्न हो गयी। कुछ तमाशा देखने वाले लोग मित्रों के बीच भी गलतफहमी उत्पन्न करा देते हैं। अतः इस दोष को छोटा न समझें।

**मन की व्याकुलता**

**यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।**
**तद्रजो प्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम्।।**

(मनुस्मृतिः अध्याय-१२, श्लोक-२८)

रजोगुण के कारण प्रीति एवं प्रसन्नता का अभाव और दुःख की अनुभूति होती है। चित्त एकाग्र न होने से चञ्चलता आती है। सत्त्वगुण की कमी के कारण मन में सुख एवं प्रकाश का अभाव और अशान्ति उत्पन्न होती

शेष पृष्ठ २७ पर

# “महाभारत के बाद वेदों के विलुप्त होने से मनुष्यमात्र की हानि हुई”

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून,मो0ः-०९४१२६८५१२१)

सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल तक समूचे विश्व में वेद और ऋषिपरम्परा अपने पूरे प्रभावशाली रूप से प्रचलित रही। महाभारत का युद्ध महाविनाशकारी सिद्ध हुआ। इसका सबसे बुरा प्रभाव यह हुआ कि इसके बाद वेदों का पठन-पाठन, वेदों का प्रचार एवं प्रशिक्षण समाप्त हो गया। ईश्वरोपासना एवं अग्निहोत्र आदि धर्म कार्यों में उस समय के कुछ प्रभावशाली अल्पज्ञानी ब्राह्मण लोग निर्णय करने लगे जिसका परिणाम यज्ञों में हिंसा व वेद विरुद्ध कार्यों व कर्मकाण्डों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। यज्ञों में की जानी वाली हिंसा का दुष्परिणाम यह हुआ कि भावी अहिंसा के पुजारी विद्वानों ने यज्ञों की इस हिंसा का सुधार न करके इसके विरुद्ध मतों की स्थपना की। महात्मा बुद्ध ने भी यज्ञों की हिंसा का विरोध किया था और कालान्तर में उनके शिष्यों द्वारा एक नास्तिक मत बौद्ध मत का प्रादुर्भाव हुआ। जैनमत का मुख्य आधार भी अहिंसा है। इस मत के आचार्यों व अनुयायियों ने भी यज्ञों की हिंसा को पसंद नहीं किया और यज्ञों के पोषक वेदमत का त्याग किया और अनेक वेदविरुद्ध मान्यताओं पर आधारित जैनमत का प्रचार व प्रसार किया। कालान्तर में स्वामी शंकराचार्य जी का आविर्भाव हुआ जो वैदिक ज्ञान व विद्या में उच्च कोटि का ज्ञान व शास्त्रार्थ कौशल में निपुण थे। उन्होंने शास्त्रार्थ करके इन नास्तिक मतों को असत्य व अव्यवहारिक सिद्ध किया जिससे भारत में लगभग ढाई हजार पूर्व पुनः वैदिक आस्तिक मत का प्रचार हुआ। दुर्भाग्य से स्वामी शंकराचार्य जी के एक जैनी शिष्य ने उन्हें धोखे से विषपान कराकर युवावस्था में ही उनका जीवन समाप्त कर दिया। शंकराचार्य जी के बाद पुनः अवैदिक विचारों का प्रचार-प्रसार होने लगा। स्वामी शंकराचार्य जी के मत में भी वेद से प्रतिकूल मान्यतायें विद्यमान थीं। इस प्रकार महाभारत काल से आरम्भ हुई वेद- ज्ञान के प्रचार-प्रसार की अवनति में वृद्धि होती गयी और अवैदिक मत अस्तित्व में आने लगे।

शंकराचार्य जी के देहावसान के कुछ काल बाद पुराणों का काल आया जब कुछ संस्कृत भाषा पर अधिकार रखने वाले तथा वेदों के यथार्थ स्वरूप से अनभिज्ञ लोगों ने वेदविरुद्ध व सत्यज्ञान के विरुद्ध पुराणों की रचना की। पं. मनसाराम वैदिकतोप जी एवं अन्य अनेक आर्य वैदिक विद्वानों ने इस तथ्य को अपने ग्रन्थों में स्पष्ट किया है। इन १८ पुराणों के रचनाकारों ने अपने ग्रन्थों की सामग्री को कहां से प्राप्त किया, इस पर प्रकाश नहीं पड़ता। पुराणों को निष्पक्ष होकर पढ़ने से इसके अनेक स्थल अनैतिहासिक, काल्पनिक एवं अविश्वसनीय प्रतीत होते हैं जो प्रत्यक्षतः ईश्वरीय ज्ञान वेदों से विरुद्ध है। ऐसा लगता है कि इनके रचनाकारों ने अपनी विचारधारा व मान्यताओं के अनुसार अध्यात्म एवं इतिहास के तथ्यों को कथाओं आदि के द्वारा अतिरंजित रूप से प्रस्तुत किया है। महर्षि दयानन्द के अनुसार ये सभी ग्रन्थ संसार में अविद्या के प्रसार में कारण रहे हैं। इन सब कारणों से ही देश और संसार में सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी परमात्मा की योग विधि से अपनी आत्मा में ध्यान, गुण-चिन्तन व जप आदि द्वारा की जाने वाली उपासना छूट गई और उसके स्थान पर भांति भांति की मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, अवतारवाद की कल्पना, मृतक श्राद्ध, जन्मना जातिवाद और नाना प्रकार के मिथ्या कर्मकाण्ड प्रचलित हुए जिससे संसार

के लोगों सहित प्राणी मात्र की भारी हानि हुई है। समय के साथ साथ मत-मतान्तरों के अन्धविश्वस, पाखण्ड, कुरीतियां, पक्षपात, अन्याय, अव्यवस्था आदि बढ़ते ही गये। विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यदि महाभारत का युद्ध किसी प्रकार टल जाता या न हुआ होता तो मानवमात्र सहित प्राणीमात्र का जो अहित वेद विद्या, वैदिक धर्म एवं सत्य वैदिक शिक्षाओं एवं सिद्धान्तों के प्रचार न होने से हुआ है, वह न होता और आज का युग पूरे विश्व में एक मत, एक भाव, परस्पर का सहयोग एवं सबकी सबके द्वारा उन्नति व सुखों में वृद्धि के रूप में व्यतीत हो रहा होता। आज संसार में जितने भी मत-मतान्तर एवं इनके आपसी झगड़े हैं, इनका कारण व आधार महाभारत युद्ध के बाद वेदों के विलुप्त होने व सत्य वैदिक शिक्षाओं के प्रचार व प्रसार के न होने से उत्पन्न अज्ञान में हुई वृद्धि ही है। ऋषि दयानन्द के साहित्य को पढ़ने पर उनका यही मत सम्मुख आता है।

वैदिक धर्म में कहा गया है कि धर्म वह है जिससे मनुष्य का अभ्युदय हो और मरने के बाद निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो। क्या सभी धर्म वा मत-मतान्तर इस मान्यता को स्वीकार करते हैं। हमे लगता है कि मत-मतान्तरों के लोग तो अभ्युदय का सही अर्थ भी शायद नहीं जानते और निःश्रेयस से तो वैदिक धर्मियों के अतिरिक्त सभी लोग अनभिज्ञ हैं। मनुष्य का अभ्युदय तब होता है, जब वह आध्यात्मिक उन्नति के साथ सद्कर्मों द्वारा पुरुषार्थ से भौतिक उन्नति को भी प्राप्त हो। इतिहास में राम, कृष्ण, दयानन्द जी सहित अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं। ये सभी महान पुरुष आध्यात्मिक उन्नति में शिखर पर थे। ऐसे मनुष्य देश व समाज से उत्पन्न होने ही बन्द हो गये हैं। देश व समाज की उन्नति तभी कही जायेगी जब हमारे समाज में राम, कृष्ण व दयानन्द जैसे ईश्वरभक्त, देशभक्त, धर्मधुरन्धर तथा आध्यात्मिक एवं भौतिक विद्याओं से सम्पन्न ऋषि-मुनि व मनुष्य उत्पन्न हों व विद्यमान हों। हमारा यह भी दुर्भाग्य है कि आज का शिक्षित समाज पतंजलि, कपिल, कणाद, गौतम, बादरायण व्यास और जैमिनी आदि ऋषियों के नामों से भी परिचित नहीं है। इन ऋषियों के द्वारा रचित ६ दर्शन ग्रन्थों के अध्ययन की बात तो बहुत दूर है। यदि हमारे आज के शिक्षित बन्धु इन ६ दर्शनों के हिन्दी भाष्यों को भी पढ़ लें तो उन्हें ऋषियों के ज्ञान व जीवनशैली का भली प्रकार से ज्ञान हो सकता है। हम समझते हैं कि कोई भी जीवनशैली वैदिक जीवनशैली जो दर्शनग्रन्थों के ज्ञान से पुष्ट हो, अच्छी नहीं हो सकती।

वर्तमान में पाश्चात्य जीवनशैली को कुछ लोग अच्छा कह सकते हैं। निःसन्देह इस जीवनशैली की कुछ बातें अच्छी हो सकती हैं। विडम्बना यह है कि इस जीवनशैली के लोगों को अपने भविष्य व परजन्म के विषय में किंचित भी ज्ञान नहीं है। जिस प्रकार हमारा यह जन्म हुआ है और कुछ समय बाद मृत्यु निश्चित है, इसी प्रकार मृत्यु के बाद हमारी नित्य व अमर आत्मा का पुनर्जन्म होना सुनिश्चित है। मृत्यु के बाद होने वाले पुनर्जन्म का आधार हमारे इस जन्म के कर्म, कार्य व व्यवहार होंगे। यदि हमने ईश्वर की आज्ञा का पालन किया होगा तो हमारा पुनर्जन्म सुखी व उन्नति को प्राप्त होगा। ऋषियों ने विश्लेषण करके बताया है कि परमात्मा हमें मनुष्य आदि जन्म पूर्व जन्म के पाप-पुण्यों व उनसे बने प्रारब्ध के आधार पर हमारी जन्म-योनि व जाति, आयु और सुख-दुःखादि का भोग निर्धारित कर देते हैं। पाश्चात्य जीवनशैली में परमात्मा के स्वरूप में उसकी वेद की आज्ञाओं को जानने व समझने के प्रति उपेक्षा बरती जाती है। इस कारण पाश्चात्य जीवनशैली को आदर्श नहीं कहा जा सकता। इसी कारण हमारे देश को विज्ञ व विप्रबन्धु वेदाध्ययन कर ईश्वरोपासना तथा दैनिक यज्ञ-अग्निहोत्र आदि करते हुए जीवन में परोपकार, दान, परसेवा आदि के कार्यों

शेष पृष्ठ १७ पर

# मूर्तिपूजा से समाधान नहीं किया जा सकता

(भावेश मेरजा,भरूच, मो0ः-०९८७९५२८२४७)

जो लोग आर्यसमाज के बारे में बहुत ही कम जानकारी रखते हैं, वे भी प्रायः इतना तो जानते होते हैं कि-

१. आर्यसमाज में शादियां कराई जाती हैं।

और

२. आर्यसमाज मूर्तिपूजा का विरोध करता है।

आर्यसमाज में शादियां क्यों कराई जाती हैं? क्या आर्यसमाज अपने भवनों में शादियां इस प्रयोजन से कराता है कि इससे वैदिक-विवाह-संस्कार का प्रचार-प्रचलन हो, लोगों के वैवाहिक या गृहस्थजीवन सुखी सफल रहें? यदि ऐसा है, तो यह तो बहुत उमदा-उदात्त प्रयोजन है! या फिर कुछ और ही प्रयोजन हो गया है? यदि शादियों से आर्यसमाज को धन प्राप्ति होती है और यही प्रयोजन रह गया है, तो यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। आर्यसमाज को इस पर आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता है।

दूसरी बात- मूर्तिपूजा के विरोध की। आर्यसमाज मूर्तिपूजा का विरोध करता है, ऐसी छाप एकांगी होते हुए भी ठीक है। लोग इतना तो जानते हैं कि आज भी कोई संस्था-समाज है, जो मूर्तिपूजा का विरोध-निषेध करता है।

आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद ने अपने जीवनकाल में मूर्तिपूजा के खंडन में बहुत समय और शक्ति लगाई थी। इसके लिए उन्होंने अपना जीवन संकटग्रस्त कर लिया था और इसी के कारण उनको सर्वत्र अनादर, तिरस्कार, घृणा, हिंसा, प्रवाद आदि का पात्र बनना पड़ा था। उनके असामयिक देहांत के पीछे उनका यह मूर्तिपूजा-विरोध कितने अंश में साक्षात् कारणभूत रहा, यह निश्चय करना तो कठिन है। परंतु स्वामी जी के रसोइए धौलमिश्र को इस बात के लिए कि स्वामी जी को दूध में जहर दे दिया जाए, तैयार करने की पूरी प्रक्रिया में मूर्तिपूजा के पक्षधर किसी व्यक्ति या मत की कि जिसके स्वार्थ मूर्तिपूजा के  माध्यम से सिद्ध होते होंगे, ऐसे किसी व्यक्ति की संभावित भूमिका से भी इंकार नहीं किया जा सकता है। यह तो बिल्कुल सत्य है कि वर्तमान युग में मूर्तिपूजा का खंडन करने में स्वामी दयानंद जी जैसा कोई नहीं हुआ। इस कार्य में वे अद्वितीय थे।

आजकल 'जातीय एकता के स्वयंभू ठेकेदार' कुछ लोग ऐसी भ्रांति फैला रहे हैं कि स्वामी जी ने अपने जीवन के अंतिम वर्षो में मूर्तिपूजा के खंडन को शिथिल कर दिया था। परंतु उनके जीवनचरित्र से यह बात मिथ्या सिद्ध होती है। उदयपुर नरेश ने एकलिंग जी की शादी के महन्त का जब प्रस्ताव रखा था, तब स्वामी जी ने उनसे जो बात कही थी, वह इस बात का द्योतक है कि उनके दिलो-दिमाग में मूर्तिपूजा के प्रति कैसे प्रबल विरोध एवं वितृष्णा के भाव थे। जीवन के उसी अन्तिम समय में स्वामी जी सत्यार्थ- प्रकाश का द्वितीय संशोधित संस्करण तैयार कर रहे थे। इस संस्करण में भी उन्होंने मूर्तिपूजा की कटु आलोचना की है और इस विषय में किसी प्रकार का शैथिल्य दिखाई नहीं देता है। आर्यसमाज स्वामी जी के विचारों का संवाहक है। मूर्तिपूजा का खंडन करना, करते रहना, उसमें किसी प्रकार का समझौता न करना- यह आर्यसमाज का एक प्रकार से उत्तरदायित्व बनता है। यह कार्य प्रभावी रूप से कैसे किया जाए, यह  निर्धारित करने के लिए संगठन के स्तर पर भी चिंतन- मनन होना चाहिए, शैली में समय के अनुरूप कुछ संशोधन करना आवश्यक है या नहीं,

इत्यादि बातों पर संगठन में विद्वानों के माध्यम से विचार-विमर्श होना चाहिए। मूर्तिपूजा के प्रभाव का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत होता जा रहा है। अवतारवाद, गुरुडम, व्यक्ति पूजा, तीर्थ एवं तीर्थयात्राएं, पूजा-अर्चना के विभिन्न कर्मकांड- ये सब कुछ मूर्तिपूजा पर आश्रित हैं। राजनीति को भी मूर्तिपूजा प्रभावित करती रहती है। ऐसे में आर्यसमाज का यह कार्य अत्यंत परिश्रम, निष्ठा, समर्पण और आयोजन की अपेक्षा रखता है।

मूर्तिपूजा के खंडन से पृथक् करने के लिए आर्यसमाज को, आर्यसमाज के विद्वानों को कई 'नीतिनिपुण' लोग परामर्श देंगे ओर मूर्तिपूजा खंडन से होने वाली कथित 'हानियों' से सावधान करेंगे। परंतु आर्यसमाज को नहीं भूलना चाहिए कि स्वामी दयानंद को भी उनके जीवनकाल में 'नीतिनिपुण' लोग ऐसे परामर्श देते रहते थे, परंतु स्वामी जी ने जिसे वेद तथा तर्क-युक्ति विरुद्ध माना, मनव ऐक्य के प्रतिकूल माना, उसके खंडन में वे सदैव प्रवृत्त रहे। आर्यसमाज को भी अपना यह धर्म निभाना होगा। आर्यसमाज के दूसरे नियम में ईश्वर के "निराकार" गुण को अग्रिम स्थान पर रखा गया है। अतः मूर्तिपूजा से समाधान नहीं किया जा सकता।

❑❑

---

पृष्ठ १५ का शेष

में जीवन बिताते हैं। इस जीवनशैली को किसी के द्वारा बुरा भी नहीं कहा जाता क्योंकि जब किसी से चर्चा की जाती है तो वह इन बातों को न समझने के कारण उपेक्षा भाव बरतता है। पक्षपातरहित होने के कारण वह निश्चिन्त जीवन व्यतीत करता है। अतः वेद की मान्यताओं के अनुसार जीवन व्यतीत करना ही श्रेष्ठ सिद्ध होता हे।

वर्तमान समय आधुनिक युग है जो भौतिक ज्ञान व विज्ञान की उन्नति में दिन प्रतिदिन नई ऊंचाइयां प्राप्त कर रहा है। इतनी उन्नति होने पर भी आज का समृद्ध व शिक्षित मनुष्य सुखी नहीं है। वह अनेक प्रकार के रोगों व असिद्ध सुखों के प्राप्त न होने के कारण से दुःखी रहता है। आवश्यकता है कि आज हम अपने सभी पूर्वाग्रहों को त्याग दें और सत्य के आधार पर अपने जीवन को बनाये व चलायें। तर्क, युक्ति व प्रमाणों के आधार पर ईश्वर, आत्मा, उपासना, कर्म आदि का निश्चय कर सार्वदेशिक स्तर पर उसे सबके लिये अनिवार्य करें जिससे सभी विवाद व समस्यायें दूर होकर एक सवर्णिम युग का सूत्रपात हो। हम पाश्चात्य देशों के लोगों से इस प्रकार के प्रस्ताव पर अनुकूल प्रतिक्रिया मिलने की आशा कर सकते हैं। जिन लोगों का अंधविश्वासयुक्त धार्मिक कार्यों से स्वार्थ सिद्ध होता है, वह ऐसे किसी प्रस्ताव का कभी समर्थन नहीं कर सकते। ऋषि दयानन्द ने वैदिक मान्यताओं के प्रकाश तथा मत-मतान्तरों की अविद्यायुक्त बातों की विवेचना पर सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थ लिख कर इसी प्रकार का प्रस्ताव किया था कि सब लोग प्रीतिपूर्वक व धर्मानुसार सत्य व असत्य का निर्धारण कर सत्य को स्वीकार तथा असत्य का त्याग करें। ऋषि दयानन्द की यह बात आज भी समीचीन व उपयुक्त है। देश व समाज को ऋषि दयानन्द जी के विचारों का अध्ययन कर उनसे लाभ उठाना चाहिये। आज देश में जो नाना प्रकार की विचारधारायें हैं, जो मनुष्यों को आपस में बांटती हैं व जिनसे देश व समाज का अहित होता है, उनसे दूर होने के लिए समाज से जातिवाद व मत-मतान्तरों की दीवारों को गिराना होगा। ऐसा करके ही संसार में सभी लोगों को पूर्ण सुख सुलभ होगा अन्यथा सुखी व श्रेष्ठ विश्व की आशा नहीं की जा सकती। वर्तमान समय में जो धार्मिक एवं सामाजिक समस्यायें हैं, इसका कारण हमें महाभारत का युद्ध व उसके बाद की परिस्थितियां लगती हैं। ऐसा हम ऋषि दयानन्द के साहित्य के अध्ययन के आधार पर कहते हैं। ऋषि दयानन्द की स्मृति को सादर नमन।

ओ३म् शम्।

❑❑

# वे भी क्या दिन थे!

(प्रा0 राजेन्द्र जिज्ञासु, वेदसदन अबोहर, मो0:-०९४१७९४७१३३)

मैं आर्यसमाज लेखराम नगर का कोई अधिकारी नहीं था परन्तु जब कालेज, में पढ़ता था या अध्यापक बना तो आर्यसमाज का सब पत्रव्यवहार प्रायः मैं ही किया करता था। मुझे अध्यापक बने थोड़ा ही समय बीता था कि एक दिन प्रातः काल आर्यसमाज के प्रधान ला. जगदीश मित्र जी ने हमारे पड़ोस में समाज के मन्त्री श्री देशराज को आकर आवाज लगाई। मन्त्री जो को कहा, "जिज्ञासु जी को भी बुलाओ।"

मुझे आवाज लगाकर बुला लिया गया। हम तीनों मन्त्री जी के द्वार पर खड़े थे। प्रधान जी ने बड़े रोष में मुझे कहा, "प्रादेशिक सभा को लिखें कि तुरन्त श्री पंडित त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री जी को घर भेजें। उनकी आवश्यकता है"

इस पर अपनी विशिष्ट शैली में मुस्कराते हुए मन्त्री जी बोले, "अब पत्र लिखने की आवश्यकता नहीं अतिथि तो रात पहुंच गया है।"

मन्त्रीजी ने मुझे कहा, "क्या आपको चाची जी (मेरी माता जी) ने नहीं बताया कि रात्रि पण्डित जी के घर पुत्र (जगत् गुरु) ने जन्म लिया है। चाची जी व मेरी पत्नी रात वहीं थीं।"

यह सन् १९५५ की घटना है। इस घटना के तीन पक्ष ध्यान देने योग्य हैं। पण्डित जी के घर में कोई वृद्धा अनुभवी अथवा दूसरी स्त्री नहीं थी। बच्चे का जन्म होने वाला है और पण्डित जी कोई व्यवस्था किये बिना बड़ी मस्ती से प्रचार में मग्न थे। तब लोगों में सामाजिक भाव कितना था कि एक समाजसेवा में समर्पित धर्मोपदेशक की पत्नी की देखरेख व प्रसव (बच्चे का जन्म) कराने के लिए अन्य देवियाँ अपने आप पहुँच जाती हैं। सब काम सुकुशलता से हो गया। पण्डितजी तो कई दिन पश्चात् घर पर आये। तब पूज्य पण्डित जी की पत्नी ने मुझे कहा, "मैंने तुम्हारे भाई को आने पर कहा, "अब आने की क्या आवश्यकता थी। मैं मर जाती तो.....।'' इस पर तुम्हारे भाई (पूज्य पण्डित जी) ने हँसी बिखेरते हुए कहा, "मर जातीं तो मैं सब बच्चों को आर्य अनाथालय फीरोजपुर मे प्रविष्ट करवाकर निश्चिन्त होकर समाज सेवा व धर्म-प्रचार करता।"

पण्डित जी की श्रीमति के ये शब्द तत्काल मेरे हृदय पर गहरे अंकित हो गये। मैंने समाज के बड़ों को भी यह सब कुछ बता दिया। पाठकवृन्द! कहना तो सरल है परन्तु ऐसा समर्पण भाव, धर्मानुराग व मस्ती कोई विरला धर्म दीवाना जाति प्रेमी ही दिखा सकता है। दुर्भाग्य की बात है कि उस प्रादेशिक सभा के मालिकों, सञ्चालकों, डी.ए.वी. कम्पनी ने अपने उस तपस्वी त्यागी, सात भाषाओं के यशस्वी विद्वान् को कभी याद ही नहीं किया। जिस विद्वान् को वेद की एक सूक्ति लेकर घण्टों प्रवचन करने में सिद्धि प्राप्त थी, इन डी.ए.वी. वालों ने अपने द्वारा प्रकाशित आर्यसमाज के वेदसेवक विद्वान् पुस्तक में उनका नामोल्लेख तक नहीं किया। धन्य है प्रकाशक टोली और धन्य है पुस्तक का लेखक।

यह बताना भी रुचिकर होगा कि श्री पंडित त्रिलोकचन्द्र जी एक बार आर्यसमाज बाजार सीताराम दिल्ली में वेद की एक ही सूक्ति लेकर लगातार आठ दिन तक वेदकथा करते रहे। यह घटना पण्डितजी के सूक्तियों पर प्रवचन की बात चलने पर श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने मुझे सुनाई। हम लेखरामनगर निवासियों में मन में इस प्रेमल, सरल तरल हृदय विनम्र, विद्वान् के प्रति उनके जीवन काल में ही असीम श्रद्धा थी, परन्तु उनका यथार्थ मूल्याङ्कन हमने तब नहीं किया। अब मैं उनके सद्गुणों व सेवाओं का स्मरण करता हूँ

तो निम्न पंक्ति मेरे अधरों पर उतर आती है-

'जब याद तुम्हारी आती है दिल धीरे-धीरे रोता है'

पण्डित जी के किस-किस गुण का मैं बखान करूँ? साहित्यकार वे थे। आर्यसमाजी पत्रकारिता के वे इतिहास पुरुष थे। संस्कृत, उर्दू, व हिन्दी के ऊंचे कवि थे। शास्त्रार्थ महारथी वे थे। देश के स्वतन्त्रता सेनानी वे थे। वे लेखनी व वाणी के धनी थे। न नाम की भूख थी और न धन की भूख थी।

वे मेरे जैसे भावुक व्यक्ति तो अवश्य थे। भावुकतावश भी मनुष्य से भूलें होती हैं, परन्तु स्मरण रखिये कि भावुक व्यक्ति ही जान जोखिम में डालकर इतिहास की धारा को मोड़ सकते हैं। महाराणा प्रताप भावुक थे और मानसिंह टोडरमल घने सयाने थे। पंडित लेखराम स्वामी श्रद्धानन्द व राजपाल भावुक हृदय रखते थे, वे लहू की धार से देश धर्म की वाटिका को सींच गये। डी.ए.वी. वाले देश, जाति व धर्म को एक भी बलिदानी न दे सके। ला. लाजपतराय व भाई परमानन्द से इन्होंने द्रोह अवश्य किया।

❑❑

# सूर्यादि के धरता

**(महात्मा चैतन्य मुनि)**

ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वस्तभितं येन नाकः।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (यजु. 32-6)

हे तीक्षण स्वभाव वाले सूर्यादि के धरता,
हे पृथिवी आदि लोकों के निर्माण कर्त्ता।
मेरा निश्चित रूप से यही दृढ़ विश्वास है।
महेश्वर आप में सुख-शान्ति का वास है।।

दुःख रहित मोक्षानन्द का पुण्य धाम तुम हो,
भोगों की इन्तहीन दौड़ का विश्राम तुम हो।
तुम्हारे सान्निध्य में रोग-शोक भाग जाते हैं।
पुण्यात्माओं के सुसंस्कार जाग जाते हैं।।

आकाश के ग्रह उपग्रहों के आधार तुम हो,
समस्त लोक-लोकान्तरों का संसार तुम हो।
इनके निर्माता व संचालक भी तुम हो प्रभु।
व्यवस्थापक, संरक्षक व पालक तुम हो प्रभु।।

हे परब्रह्म! सकल सुखदायक परमात्म देव!
एक मात्र कामना करने योग्य सनातन देव!
पूर्ण सामर्थ्य से भगवन् आपकी भक्ति करें।
'चैतन्य' अगाध श्रद्धा से आपकी शरण वरें।।

❑❑

# हमारे राजनेताओं द्वारा परोसे जा रहे हिन्दुओं को झूठ

(कृष्णचन्द्र गर्ग, पंचकूला, दूर0:-०१७२-४०१०६७६)

**१. आतंक का कोई मजहब नहीं है** - उनका कहने का मतलब है कि आतंकवादियों का कोई मजहब नहीं है, वे सिरफ आतंकवादी हैं और उनका मजहब सिरफ आतंक है। यह नारा पूरी तरह झूठा है और हिन्दुओं को धोखे में रखने का षड़यन्त्र है। सारी दुनिया में जितनी भी आतंक की घटनाएं हो रही हैं उनमें ६६ प्रतिशत घटनाएं मुसलमानों द्वारा की जा रही हैं। शेष १प्रतिशत घटनाएं उन ६६ प्रतिशत घटनाओं के प्रतिकार के रूप में हो सकती हैं। आतंक की हर घटना के समय, पहले या पीछे, आतंकी स्वयं ही अपना मुसलमान होने का परिचय देता है और उस घटना के पीछे अपना उद्देश्य भी बताता है। वह बताता है कि यह अल्लाह का हुक्म है, जिसका वह पालन कर रहा है और कि मरने पर वहिश्त में जाएगा जहां उसे भोगने के लिए ७२ हूरें (बहुत खूबसूरत नौजवान लड़कियां) तथा और सभी सुख-सुविधाओं का सामान मिलेगा। आतंक की हर घटना के बाद कोई न कोई मुस्लिम आतंकी संगठन बड़े गर्व से उसकी जिम्मेदारी भी लेता है। जब कोई आतंकी मारा जाता है, तो हजारों मुसलमान उसके जनाजे में भाग लेते हैं। ये बातें चीख-चीख कर बता रही हैं कि आतंकी मुसलमान ही हैं।

मुसलमानों की पवित्रतम पुस्तक कुरान उन्हें समझाती है कि काफिरों (गैर-मुस्लिमों) का कत्ल करना उनके लिए सबसे अधिक पवित्र काम है और कि सारी दुनिया में इस्लामी राज स्थापित करना उनका उद्देश्य है। पिछले १४०० साल का इस्लाम का इतिहास यही सिद्ध कर रहा है। मुसलमानों का पैगम्बर मुहम्मद जिन्दगीभर आतंक का खेल ही तो खेलता रहा है। मुसलमान और भी खुश होते हैं जब कत्ल किए जाने वाले लोग ही 'आतंक का कोई मजहब नहीं' बोलकर कातिलों का बचाव भी करते हैं। इतिहास बताता है कि भारत में मुसलमान आक्रमणकारियों और शासकों ने जब भी हिन्दुओं को कत्ल किया या उनके मन्दिर-मूर्तियां तोड़ीं, उन्होंने बड़े गर्व के साथ उसका वर्णन किया - यह दर्शाने के लिए कि उन्होंने अल्लाह का बहुत बड़ा और पवित्र काम किया है। फिर भी कहना कि आतंक का कोई मजहब नहीं है - क्या यह वाक्य हमारे राजनेताओं की कायरता और मानसिक दिवालिएपन का परिचायक नहीं है?

**२. मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना** - बड़ा झूम-झूम कर गाया जाता है यह तराना जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल उलट है। मुसलमानों की मजहबी पुस्तक कुरान में ६००० से अधिक आयतें हैं। उनमें एक तिहायी आयतें ऐसी हैं जो गैर-मुस्लिमों के प्रति नफरत पैदा करती हैं, उन पर अत्याचार करने का और उन्हें मुसलमान बनाने का या जान से मार देने का आदेश देती हैं। सभी मुसलमानों के लिए कुरान के प्रत्येक शब्द को बिना शक किए सत्य मानना तथा स्वीकार करना अनिवार्य है। इसलिए मुसलमान आंतक की जो भी घटना करते हैं वे कुरान के आदेश से ही करते हैं। इस्लाम में भाईचारा सिरफ मजहब का है। मुसलमान दुनिया में कहीं भी रहते हैं वे आपस में भाई-भाई हैं और गैर-मुस्लिम उनके शत्रु हैं - कुरान का यही फरमान है। कुरान की कुछ आयतें -

६.५ - मूर्तिपूजक जहां भी मिलें उन्हें कत्ल करो।

४:१०१ - गैर-मुस्लिम निश्चित तौर पर तुम्हारे खुले शत्रु हैं।

८:१२ - गैर-मुस्लिमों की गर्दनों पर और उनकी सब उंगलियों पर प्रहार करो।

**३. सर्वधर्म समभाव** - इस वाक्यांश का अर्थ है कि सभी धर्मों के प्रति एक जैसी भावना रखो। पहली बात तो यह है कि ये सभी धर्म नहीं हैं, अपितु मजहब या पंथ हैं। सभी मजहबों के अलग-अलग अपने अपने आदर्श पुरुष हैं। उनके मजहबी ग्रन्थ अलग-अलग हैं, उनकी मान्यताएं अलग-अलग हैं। उनमें बहुतों के खानपान, पहरावा, रीति-रिवाज भी अलग-अलग हैं। भारत पर आक्रमण करने वाले महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, बाबर आदि मुसलमानों के आदर्श पुरुष हैं, जबकि वे हिन्दुओं के हत्यारे थे। गाय को 'हलाल' के नाम पर तड़पा-तड़पा कर मारना, फिर उसका मांस खाना मुसलमान अपना अधिकार मानते हैं जबकि हिन्दू गाय को पैर से छूना भी पाप मानते हैं। मुसलमानों की मजहबी पुस्तक कुरान गैर-मुस्लिमों पर जुल्म करने का आदेश देती है। हिन्दु 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात सारे संसार को अपना परिवार मानता है। क्या कोई नेता बता सकता है कि ऐसी स्थिति में 'सर्वधर्म समभाव' का झूठ क्यों फैलाया जा रहा है। और भी, इस पाखण्ड को केवल हिन्दू ही अपनाए हुए हैं और कोई मजहब वाला नहीं।

**४. गंगा-यमुनी सभ्यता** - यह वाक्य मुसलमानों को बहुत प्रिय है। वे कहते हैं कि भारत में केवल हिन्दुओं की ही नहीं, अपितु हिन्दू और इस्लाम की रली-मिली सभ्यता है। मुसलमान आठवीं सदी से आक्रमणकारी के रूप में ही भारत आए। उन्होंने एक हजार वर्ष तक भारत के मूल निवासी हिन्दुओं का करोड़ों की संख्या में कत्लेआम किया, मौत का डर दिखाकर उन्हें मुसलमान बनाया, उन्हें गुलाम बनाकर गजनी आदि स्थानों पर ले जाकर बेचा, उनसे गन्दे से गन्दे काम करवाए, स्त्रियों से बलात्कार किए, बीसों हजार मन्दिर-मूर्तियां तोड़ीं और उनसे अथाह धन सम्पति लूटी, भारत को काटकर अलग - पाकिस्तान और बंग्लादेश - दो इस्लामी देश बना लिये। जबकि हिन्दू जब से यह पृथ्वी बनी है अर्थात लगभग दो अरब वर्ष से यहां रह रहे हैं और उनकी सभ्यता भी उतनी ही पुरानी है। फिर भी मुसलमान शेष बचे भारत पर अपना अधिकार जताने के लिए गंगा-यमुनी सभ्यता का राग अलापते हैं। हिन्दुओं को इस झांसे में नहीं आना चाहिए। भारत की सभ्यता शुद्ध वैदिक सभ्यता ही है, रली-मिली नहीं।

**५. अनेकता में एकता** - भाषा के आधार पर अलग-अलग प्रान्त, मजहब के आधार पर अलग-अलग कानून, जातपात के आधार पर अलग-अलग सुविधाएं, अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक के नाम पर जनता का बटवारा - ये अलग-अलग व्यवस्थाएं देश को जोड़ नहीं रहीं, अपितु, तोड़ रही हैं। हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी बारम्बार बड़े जोर-शोर से कहते हैं कि 'अनेकता में एकता' हमारी बड़ी ताकत है। क्या आप बताएंगे कि मुसलमानों का सब देशवासियों के लिए एक से कानून (यूनिफार्म सिविल कोड) न बनने देना देश की बड़ी ताकत है। देशहित में जनसंख्या नियन्त्रण कानून बनना चाहिए। परन्तु मुस्लिम नेता इस बात से सहमत नहीं हैं, इसलिए हमारे राजनेता इस विषय को नहीं उठाते, क्या यह भी देश की बड़ी ताकत है? अयोध्या में राम मन्दिर पर हिन्दुओं और मुसलमानों में गतिरोध भी क्या देश की बड़ी ताकत है? जातपात के आधार पर आरक्षण - जिसके कारण योग्यता को नकार दिया गया है और अयोग्यता को बढ़ावा दिया गया है, क्या यह देशहित में है और देश की बड़ी ताकत है? नहीं, ये हमारी ताकत नहीं, अपितु कमजोरियां हैं।

व्यक्तिगत विषयों में स्वतन्त्रता और अनेकता रहती है, परन्तु सार्वजनिक और राष्ट्रीय विषयों में एकता का होना परम आवश्यक है जैसे सड़क पर बाईं ओर वाहन चलाने का कानून सबके लिए एक सा है।

यही राष्ट्र की ताकत है। अनेकता में एकता नहीं, अपितु एकता में ही एकता है, अनेकता में तो विघटन ही है।

आर्य समाज के संस्थापक, वेदों के प्रकाण्ड पण्डित, अद्वितीय सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने राष्ट्र की एकता के लिए 'सबका एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य' का होना परम आव यक बताया है। आर्य समाज के नियम बनाते हुए उन्होंने दसवां नियम दिया - 'सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने मे परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।'

**६. गान्धीवाद** - गान्धी ने हिन्दुओं का तथा दे ा का जितना अहित किया है उतना शायद ही और किसी ने किया हो। उनकी झूठी अहिंसा तथा कपटपूर्ण सत्यता देश के लिए तथा हिन्दुओं के लिए बहुत घातक रहे हैं। गान्धी ने अपने आपको मुसलमानों के आगे पूरी तरह समर्पित कर रखा था। वे मुसलमानों की हर अनुचित मांग के आगे सिर झुकाते थे तथा हिन्दुओं पर दबाव बनाते थे कि वे भी वैसा ही करें। अपनी प्रार्थना सभाओं में वे हिन्दुओं को आदेश देते थे कि मुसलमान उन पर राज करें या उन्हें जान से मार दें तो भी वे उनका विरोध न करें। मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर होते अत्याचारों को देखकर भी वे अनदेखा करते थे, चुप रहते थे, उन्हें छिपाने की कोशिश करते थे या फिर उन हत्यारे मुसलमानों का ही पक्ष लेते थे। दिसम्बर १९२६ में स्वामी श्रद्धानन्द के हत्यारे अब्दुल रशीद को गान्धी ने अपना 'भाई' कहा था और उसे 'निर्दोष' बताया था, परन्तु भारत की अंग्रेज सरकार ने १९२७ में उसे फांसी दे दी।

भारत विभाजन के समय कई लाख निर्दोष लोगों का कत्ल हुआ जिनमें अधिकतर हिन्दू थे। उसके लिए पूरी तरह गान्धी की जिद्द 'जो जहां रहता है वहीं रहे' ही जिम्मेदार है। गान्धी ने कहा था 'पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा'। पाकिस्तान तो बना पर इस पर उनकी लाश नहीं बिछी। गान्धी ने स्वतन्त्र भारत के नेताओं को राष्ट्र-घातक सलाह दी थी कि देश को सेना की आव यकता नहीं है, अहिंसा ही देश की रक्षा करेगी। चुनाव जीतकर कांग्रेस के अध्यक्ष बने सुभाष चन्द्र बोस को गान्धी ने काम नहीं करने दिया, उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा। पन्द्रह प्रदेश कांग्रेस कमेटियों में से बारह ने सरदार पटेल के पक्ष में मत दिया था और नेहरू के पक्ष में एक भी मत न था। फिर भी गान्धी ने पटेल को पीछे करके नेहरू को देश पर थोप दिया। निश्चित तौर पर यह लोकतन्त्र की हत्या तथा देश से गद्दारी थी। गान्धी ने मुसलमानों के खिलाफत आन्दोलन में हिन्दुओं को घसीटा जिसके परिणामस्वरूप मालावार (केरल) में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अथाह अत्याचार किए। गान्धी महाराणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोबिन्द सिंह जैसे महान देश भक्तों की निन्दा करते थे, उन्हें गलत मार्ग पर चलने वाले बताते थे। वे हिन्दू नेताओं - लाला लाजपत राय, पण्डित मदनमोहन मालवीय तथा स्वामी श्रद्धानन्द की बुराई किया करते थे। इस प्रकार गान्धी ने हिन्दू कौम को कायर, कमजोर और दब्बू बनाया। फिर भी भारत के राजनेताओं ने गान्धी का पल्ला अभी तक पकड़ा हुआ है, उसे राष्ट्रपिता, बापू तथा महात्मा बनाकर देश पर लाद रखा है। इससे बड़ा देश का दुर्भाग्य और क्या होगा?

नोट - डा. अम्बेडकर तथा वीर सावरकर गान्धी को महात्मा नहीं मानते थे।

**७. सत्यमेव जयते** - यह मुण्डकोपनिषद का वचन है। पूरा श्लोक तो बड़ा है, परन्तु आधा श्लोक है -

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पन्था विततो
देवयानः।

अर्थ - सत्य की ही जीत होती है, झूठ की नहीं। सत्य के मार्ग पर चलकर ही मनुष्य देवता बनता है।

वाक्य तो बड़ा पवित्र है, परन्तु हमारे राजनेता जो कोई सत्य बोलता है, उस पर भूखे भेड़िए की तरह टूट पड़ते हैं कि उसने सत्य क्यों बोल दिया। देश का मीडिया उसे विवादित बयान कहकर नकार देता है। 'सत्यमेव जयते' - उचित ध्येय वाक्य होने पर भी हमारे राजनेताओं ने इसे झूठा सिद्ध कर दिया है। इसका कारण है कि वे मुसलमानों से डरते हैं, उनकी खुशामद में लगे हैं। उनका पूरा प्रयास है कि जो बात मुसलमानों को प्रिय न हो वह बात देश में कोई भी हिन्दू न बोले, वह बात चाहे कितनी भी सत्य और सही क्यों न हो। यह हमारे राजनेताओं के नैतिक पतन की पराकाष्ठा है। इसी कारण से हिन्दू कौम विनाष के कगार पर पहुँच गई है। अगर हमारे हिन्दू नेता सत्य को स्वीकार करें तथा सत्य को प्रोत्साहन दें तो हिन्दू कौम पुनः सजीव, सशक्त तथा उन्नत हो सकती है।

❑❑

---

(पृष्ठ १२ का शेष)

प्रसंग प्रस्तुत किये। किन्तु मैं यह देखकर दंग रहा गया कि हमारे बीच ऐसे-ऐसे साहसी, स्वाभिमानी, हठी तथा प्रखर संकल्पी भी थे, जो इतने अमानवीय कष्ट झेलकर भी तिल भर भी नरम नहीं बन पाये थे।.... तो मेरा मस्तक उनके प्रति श्रद्धा से झुक गया। मुझे लगा कि ऐसे दृढ़ संकल्पी राष्ट्रभक्तों के रहते हमारे देश का भविष्य अत्यन्त गौरवपूर्ण होगा। परन्तु अन्त में वे मेरे आग्रह और तर्कों से सहमत हो गए कि जेल की चारदीवारी में सड़ते रहने की अपेक्षा बाहर निकल कर राष्ट्र की ज्यादा और रचनात्मक सेवा कर सकते हैं। तब कहीं सबने उस करार-पत्र पर हस्ताक्षर किए और कारागार की काल कोठरियों और प्राचीरों से उन्हें मुक्ति मिली।"

२२ जून १९४० को नेता जी सुभाषचन्द्र बोस वीर सावरकर से मिलने मुम्बई पहुँचे। भेंट के समय नेता जी ने कोलकाता (कलकत्ता) में हॉलवेल व अन्य अंग्रेजों की मूर्तियाँ तोड़ने की अपनी योजना से उन्हें अवगत कराया। यह सुनकर वीर सावरकर जी बड़े गम्भीर भाव से बोले-"मूर्तिभंजन जैसे अतिसाधारण अपराध के कारण आप सरीखे तेजस्वी और शीर्षस्थ राष्ट्र- भक्तों को जेल में पड़े-पड़े सड़ना पड़े, यह मैं ठीक नहीं समझता। सफल कूटनीति की माँग है स्वयं को बचाते हुए शत्रु को दबोचे रखना। ब्रिटेन आजकल युद्ध के महासंकट में फँसा है हमें इससे पूरा लाभ उठाना चाहिए। यह देखिये श्री रासबिहारी बोस का गुप्त पत्र। इसके अनुसार जापान कभी भी युद्ध में शामिल हो सकता है। ऐसे ऐतिहासिक अवसर को हाथ से मत जाने दो। आप भी, रास बिहारी बोस आदि क्रांतिकारियों के सदृश अंग्रेजों को चकमा देकर विदेश खिसक जाइये और उचित समय आते ही जर्मन-जापानी सशस्त्र सहयोग प्राप्त कर देश की पूर्वी सीमा की ओर से ब्रिटिश सत्ता पर आक्रमण करने का मनसूबा बनाइये। ऐसे सशस्त्र प्रयास के बिना देश को कभी स्वाीधन नहीं कराया जा सकता।"

और नेता जी सुभाष ने वीर सावरकर की प्रेरणा व मार्गदर्शन के अनुसार विश्व प्रसिद्ध कार्य कर भारत को स्वतन्त्र कराने में विशेष भूमिका निभाई। आजाद हिन्द रेडियो से २५ जून १९४४ को बोलते हुए नेताजी ने कहा- ''भ्रमित राजनीति और अदूरदर्शिता के कारण जब प्रायः सभी कांग्रेसी नेता भारतीय सेना के सिपाहियों को 'भाड़े के टट्टू' कह कर अपमानित करते थे, तब सर्वप्रथम वीर सावरकर ने निर्भीकतापूर्वक भारतीय युवकों को अधिकाधिक सेना में भर्ती होने के लिए आह्वान किया। उन्हीं की प्रेरणा पर सैनिक बने ये युवक अब हमारी आजाद हिन्द फौज के सैनिक हैं।"

तो भी नेहरू सरकार ने वीर सावरकर को स्वतंत्रता सेनानी होने का सम्मान (पेंशन) भी नहीं दिया। फिर उन्हें 'कायर कहने वाले कृतघ्न उनसे कौन सा सम्मान वापस लेना चाहते हैं?

(क्रमशः)

❑❑

# पुनर्जन्म शास्त्रानुमोदित है

(महात्मा चैतन्यमुनि, सुन्दरनगर-हिमाचल प्रदेश)

ऋग्वेद में पुनर्जन्म के सम्बन्ध में कहा गया है-

**असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।**
**ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति।।**
**पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु, पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।**
**पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषापथ्यां या स्वस्तिः।। (ऋ. १०-५६-६, ७)**

अर्थात् हे सुखदायक परमात्मा! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हमारे बीच में उत्तम नेत्र आदि सब इन्द्रियाँ स्थापन कीजिए। तथा प्राण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, बल, पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिए। हे प्रभु! इस संसार अर्थात् इस जन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम-उत्तम भोगों को प्राप्त हों तथा हे भगवन्! आपकी कृपा से सूर्यलोक, प्राण और आपको विज्ञान तथा प्रेम से सदा देखते रहें। हे अनुमते-सबको मान देने हारे! सब जन्मों में हम लोगों को मृडय-सुखी रखिए, जिससे हम लोगों का **स्वस्ति** अर्थात् कल्याण हो। हे सर्वशक्तिमान्! आपके अनुग्रह से हमारे लिए बारंबार पृथिवी प्राण को, प्रकाश चक्षु को, और अन्तरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें। तथा पुष्टि करने वाला परमात्मा कृपा करके सब जन्मों में हमको सब दुःख निवारण करने वाली पथ्यरूप स्वस्ति को देवे। इसी वेद में अन्यत्र पुनर्जन्म की पुष्टि करते हुए कहा गया है-

**गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।**
**शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निदरीयम्। (ऋ०४-२७-१)**
**यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो।**
**एवा पवस्य सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते।। (ऋ०९-८२-५)**

भावार्थ- मनुष्यों को चाहिए कि सदा सृष्टिविद्या बोध और जन्म-मरण की शरीरसम्बन्धी विद्या जानें, जिससे सदैव निर्भयता वर्त्ते। परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीवो! तुम्हारे पूर्वजन्म बहुत व्यतीत हुए हैं अतः तुम इस नूतन जन्म में सत्कर्म करके अभ्युदयशाली और तेजस्वी बनो। मरने के बाद मनुष्य को पुनः शरीर, इन्द्रिय तथा प्राण प्राप्त होते हैं इसलिए वेद (ऋ. १०-५६-६) में प्राणों की प्राणदायिनी 'असुनीति' से हम सबके अन्दर पुनः चक्षु तथा प्राण स्थापित करने की प्रार्थनाएँ की गई हैं। अन्यत्र (ऋ.१-१६४-४, १-१६४-३०) प्रश्न उठाया गया कि अन्तिम जीवन सार अस्थिविहीन आत्मा के अस्थिमय शरीर धारण की यथार्थ प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से किसने देखा? इसका उत्तर दिया गया कि प्राणयुक्त, चैतन्ययुक्त जीवनतत्व मृण्मय शरीर में प्रतिष्ठित है.... यह पुनर्जन्म की ओर ही स्पष्ट संकेत है। ऋ. १-१४-१८ में प्रार्थना की गई है- इष्टापूर्त कर्म करते हुए मृत्यु के बाद यम-पितर-लोक की प्राप्ति हो और कर्मफल भोगकर पुनः मृत्युलोक में जाकर कान्तिमान् शरीर प्राप्त हो।

यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है-

**पुनर्मनः पुनरायुर्मऽ आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्।**
**वैश्वानरोऽअदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्।।** (यजु० ४-१५)

हे सर्वज्ञ परमेश्वर! जब-जब हम जन्म लेवें, तब-तब हमको शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आरोग्यता, प्राण कुशलतायुक्त जीवात्मा, उत्तम चक्षु और श्रोत्र प्राप्त हों। जो विश्व में विराजमान ईश्वर है, वह सब जन्मों में हमारे शरीरों का

पालन करें। सब पापों का नाश करने वाले आप हमको बुरे कर्मों और सब दुःखों से पुनर्जन्म में अलग रखें।। इसी वेद में अन्यत्र लिखा है-

**अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे।**
**गर्भे सन् जायसे पुनः।।**
**प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने**
**संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः।।**
**(यजु० १२- ३८)**

हे जीव! तेरा स्थान जल में है। तू औषधि-वनस्पतियों में कर्मानुकूल रोका जाता है और गर्भ में होता हुआ पुनः जन्म लेता है। हे तेजस्वी प्रकाशमय जीव! तू शरीरदाह के बाद पृथिवी और जलों में होकर नवीन योनि को प्राप्त हो और माताओं के उदर में वास करके फिर शरीर को प्राप्त हो। अथर्ववेद में आया है-

**पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च**
**पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम**
**कल्पयन्तामिहैव।। (अथर्व० ७-६७-१)**

हे प्रभो! मुझे इस जन्म तथा परजन्म में आत्मबल, धन और वेदविज्ञान अवश्य प्राप्त हो। इस जन्म तथा परजन्म में मुझे बोलने वाले चुतर लोग अवश्य ही समर्थ करें। इसी वेद में आगे जीवात्मा के विभिन्न शरीरों को धारण करने की बात इस प्रकार कही है-

**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी**
**त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि**
**विश्वतोमुखः।।**
**उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत**
**वा कनिष्ठः।**
**एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स**
**उ गर्भे अन्तः।।(अथर्व. १०-८-२७,२८)**

अर्थात् हे जीवात्मा! तू स्त्री, तू पुरुष, तू कुमार और कभी तू ही कुमारी बनता है.... तू स्तुति किया गया (होकर) दण्ड (दमन-सामर्थ्य) से चलता है, तू सब ओर मुख वाला (बड़ा चतुर होकर) प्रसिद्ध हाता है। हे जीव! तू कभी इन पुत्र-पुत्रियों का पिता बनता है, और कभी इन्हीं का तू पुत्र बनता है। कभी तू इनका ज्येष्ठ बनता है, और कभी कनिष्ठ बनता है। निश्चय से यह एक ही दिव्य-जीवात्मा है, जो मन अर्थात् चित्त में प्रविष्ट हुआ-हुआ कभी तो पहले पैदा होता है, और निश्चय से वही मर कर फिर मातृयोनि में आता है.... इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है

**अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।**
**यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः।।**
(अथर्व. ११-४-१४)

अर्थात् हे जीव! तू गर्भ के भीतर श्वास लेता है और बाहर श्वास लेता है। हे प्राण! जब तुझे जीवनदाता परमात्मा तृप्त करता है, तब तू फिर-फिर उत्पन्न होता है।

न्याय दर्शन (१-१-१९) **पुनरूत्पत्तिः प्रेत्यभावः।** सूत्र के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी लिखते (ऋ.भा.भू.) हैं- न्यायदर्शन के (पुनरू.) सूत्र, और उसी के वात्सायन भाष्य में भी कहा है कि जो उत्पन्न अर्थात् किसी शरीर को धरण करता है, वह मरण अर्थात् शरीर को छोड़के, पुनरुत्पन्न दूसरे शरीर को भी अवश्य प्राप्त होता है। इस प्रकार मर के पुनर्जन्म लेने को **'प्रेत्यभाव'** कहते हैं। न्याय दर्शन में अन्यत्र (३-२-६४) कहा गया है- **पूर्वकृतफलानुबंधात्तदुत्पत्तिः** अर्थात् पूर्व शरीर में किए कर्मों के फलों के अनुबन्ध अर्थात् लगाव से इस वर्तमान शरीर की उत्पत्ति होती है। नचिकेता ने यमाचार्य जी से पूछा था कि क्या मरने के बाद कुछ बाकी रहता है या नहीं। इसके उत्तर में यमाचार्य जी कहते हैं-

**हन्त त इदम्प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।**
**यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवित गौतम।।**
**योनिमन्ये प्रपन्द्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।**
**स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।**
**(कठो० ५-६, ७)**

मरने के बाद, शरीर के नष्ट हो जाने पर जो जीव बाकी रहता है, उसकी क्या गति होगी? यह बात अब कही जाती है। एक प्रकार के प्राणी शरीर ग्रहण करने के लिए जंगम अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियों में जाते हैं और दूसरे स्थावर अर्थात् वनस्पति आदि योनियों को प्राप्त होते हैं। यह आवागमन उनके ज्ञान और कर्म के अनुसार हुआ करता है। शतपथ ब्राह्मण

(१०-४-३-१०, ११-२-१-१) के अनुसार कर्म करता हुआ जीव मृत्यु के बाद पुनः जन्म ग्रहण करता है। जैसे साँप केंचुली को छोड़कर चल देता है, वैसे ही आत्मा भी देह को त्यागकर चला जाता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (३-६-२२) में पुनर्जन्म के स्थान पुनर्मृत्यु का वर्णन मिलता है.... रामायण में मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण से कहते हैं-

**पूर्वं मया नूनमभिप्सितानि पापानि**
**कर्मण्यसकृतकृतानि।**
**तत्राद्ययमापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं**
**विशामि।।**
**राज्यं प्रणाशः सवजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो**
**जननीवियोगः।**
**सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगमापूरयन्ति**
**प्रविचिन्तितानि।। (वा० राम० ३-६३-४)**

'निश्चय ही मैंने पूर्वजन्म में अनेक बार मनचाहे पाप किए हैं, जिनका फल आज मुझे प्राप्त हुआ है, जिससे मैं एक दुःख से दूसरे दुःख को प्राप्त हो रहा हूँ। हे लक्ष्मण! राज्य का नाश, घरवालों का छूटना, पिता का मरण, माता का वियोग ये मेरे शोक को बढ़ाते हैं। 'इसी प्रकार सीता जी भी हनुमान से कहती हैं-

**भाग्यवैषम्ययोगेन पुरा दुश्चरितेन च।**
**मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्यायुपभुज्यते।।**
(वा०रा० ११३-३६)

'मैंने पिछले जन्म में जो पाप किए है, उसी के परिणाम स्वरूप मेरे भाग्य में यह विषमता आ गई है। मैं भी अपने पूर्वकृत का भोग प्राप्त कर रही हूँ क्यों कि अपने ही किए का फल भोगना पड़ता है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

**न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।**
**न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्**
**देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।**
**तथा देहान्तर-प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति**
**(गीता २-१२, १३)**

'न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था अथवा तू नहीं था या ये राजा लोग नहीं थे और न कभी कोई ऐसा समय आएगा जब कि हम सब इसके बाद नहीं रहेंगे। जैसे शरीर धारण करने पर जीवात्मा को इस देह में बचपन, जवानी और बुढ़ापा प्राप्त होता है, वैसे ही मरने पर दूसरा शरीर प्राप्त हो जाता है, धीर व्यक्ति को इस बात से मोह में नही पड़ जाना चाहिए। इसी सम्बन्ध में आगे कहा गया है-

**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**
**नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
**तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि**
**संयाति नवानि देही।। (गी. २-२२)**
**बहुनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।**
**तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।**
**(गी. ४-५)**

'जैसे व्यक्ति फटे-पुराने वस्त्रों को छोड़कर दूसरे नए वस्त्र पहन लेता है, वैसे ही यह देही, जीवात्मा पुराने व जीर्ण-शीर्ण शरीरों को छोड़कर नए शरीरों को प्राप्त करता है .... धारण कर लेता है। हे अर्जुन! मेरे और तेरे भी बहुत से जन्म हो चुके हैं परन्तु हे परन्तप! उन सबको तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ।' महाभारत में भी अनेक स्थानों पर पुनर्जन्म का उल्लेख मिलता है। युद्ध में दुर्योधन के मारे जाने के बाद धृतराष्ट्र विलाप करते हुए कहता है-

**नूनं व्यपकृतं किंचितन्मया पूर्वेषु जन्मसु**
**येन मां दुःखभागेषु धाता कर्मसु युक्तवान्।**
**परिणामश्च वयसः सर्वबन्धुक्षयश्च मे**

'हे कृष्ण! हमने पूर्व जन्म में निश्चित रूप से बहुत पाप किए हैं, इसी कारण विधाता की ओर से हमें यह दारुण दुःख प्राप्त हुआ है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ और मेरे सभी बन्धु-बान्धव मृत्यु को प्राप्त हो गए है।' गान्धारी भी शोकाकुल होकर कहती है-

**नूनमाचरितं पापं मया पूर्वेषु जन्मसु।**
**या पश्यामि हतान् पुत्रान् पौत्रान् भ्रातरश्च माधव।।** (महा.अनु.७) 'हे माधव! मैने निश्चित रूप से पिछले जन्म में बहुत से पाप किए हैं, इसी कारण से अपने पुत्रों, पौत्रों और सभी भाइयों को मरा हुआ देख रही हूँ।' महाभारत अनु. पर्व. १४५ में भी कहा

गया है-

**देह- क्षयति नैवात्मा वेदनाभिर्न चाल्यते।**
**तिष्ठेत् कर्मफल यावद् व्रजेत् कर्मक्षये पुनः।।**

अर्थात् शरीर क्षीण होता है, आत्मा नहीं। आत्मा वेदनाओं से भी विचलित नहीं होता। जब तक कर्मफल शेष रहता है, तब तक जीव भी शरीर में रहता है। कर्मक्षय अर्थात् भोग समाप्त होने पर ईश्वर व्यवस्थानुसार यह जीव शरीर छोड़ कर चला जाता है।

व्यक्ति द्वारा पुनर्जन्म की अनुभूति के बारे में निरुक्तकार का कहना है-

**मृताश्चहं पुनर्जातो जातश्चहं पुनर्मृतः।**
**नानायानिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै।**
**आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।**
**मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा।**
**अवाड्मुखः पीडयमानो जन्तुश्चैव समन्वितः।।**

(१३-१९-१, २, ७)

अर्थात् जब मनुष्य को ज्ञान होता है, तब वह ठीक-ठीक जानता है कि मैंने अनेक बार जन्ममरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारों गर्भाशयों का सेवन किया। अनेक प्रकार के भोजन किए, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया, अनेक माता-पिता और सुहृदों को देखा। मैंने गर्भ में नीच-मुख ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होके अनेक जन्म धारण किए। परन्तु अब इन महादुःखों से तभी छूटूँगा कि जब परमेश्वर में पूर्ण प्रेम और उसकी आज्ञा का पालन करूँगा, नहीं तो इस जन्ममरणरूप दुःखसागर के पार जाना कभी नहीं हो सकता। योगदर्शन में कहा गया है-

**'स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढ़ोऽभिनिवेशः।** (२-९) अर्थात् हरएक प्राणियों की यह इच्छा नित्य देखने में आती है कि मैं सदैव सुखी बना रहूँ, मरूँ नहीं। यह इच्छा कोई भी नहीं करता कि मैं न होऊँ। ऐसी इच्छा पूर्वजन्म के अभाव से कभी नहीं हो सकती। यह -अभिनिवेश' क्लेश कहलाता है, जो कि कृमिपर्यन्त को भी मरण का भय बराबर होता है। यह व्यवहार पूर्वजन्म की सिद्धि को जनाता है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द जी लिखते (ऋ.भू.मुक्तिविषय) हैं- '.... पाँचवा 'अभिनिवेश; क्लेश है, जो प्राणियों की नित्य आशा होती है कि हम सदैव शरीर के साथ बने रहें अर्थात् कभी मरें नहीं, सो पूर्वजन्म के अनुभव से होती है और इससे पूर्वजन्म भी सिद्ध होता है। क्योंकि छोटे-छोटे कृमि चींटी आदि को भी मरण का भय बराबर बना रहता है, इसी से इस क्लेश को अभिनिवेश कहते हैं, जो कि विद्वान् मूर्ख और क्षुद्रजन्तुओं में भी बराबर दीख पड़ता है। इस क्लेश की निवृत्ति उस समय होगी कि जब जीव परमेश्वर और प्रकृति अर्थात् जगत् के कारण को नित्य और कार्यद्रव्य के संयोग-वियोग को अनित्य जान लेगा। इन क्लेशों की शान्ति से जीवों को मोक्षसुख की प्राप्ति होती है।' वे अन्यत्र (ऋ.भू. पुनर्जन्मविषय) लिखते हैं- 'तथा योगशास्त्र में भी पुनर्जन्म का विधान किया है **(स्वरस.)(सर्वस्य प्राणि.)** हर एक प्राणियों की यह इच्छा नित्य देखने में आती है कि **(भूयासमिति)** अर्थात् मैं सदैव सुखी बना रहूँ, मरूँ नहीं। यह इच्छा कोई भी नहीं करता कि **(मा न भूवं)** अर्थात् मैं न होऊँ, ऐसी इच्छा पूर्वजन्म के अभाव से कभी नहीं हो सकती। यह -अभिनिवेश क्लेश कहलाता है, जो कि कृमि पर्यन्त को भी मरण का भय बराबर होता है, यह व्यवहार पूर्वजन्म की सिद्धि को जनाता है।

❑❑

---

पृष्ठ १३ का शेष

है। ऐसी अवस्था में बाह्य साधनों की बहुलता भी वास्तविक सुख नहीं दे पाती और व्याकुलता बनी रहती है।

<u>पानी में मीन प्यासी</u>

**अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदत् जरितारम्।**
**मृडा सुक्षत्र मृडय।।**(ऋग्वेदः मडल-७, सूक्त-८९, मन्त्र-४)

हे प्रभो! आप सर्वव्यापक, संसार के स्वामी, सबके रक्षक एवं सुखप्रदाता हैं। मेरी इन्द्रियों के दोषों, बुद्धि की भूलों एवं अहंकार के कारण मन में व्याकुलता बनी है। ऐसा लगता है, जैसे पानी में रहते हुए भी मछली प्यासी हो। अतः आप कृपा कीजिए और मुझे पापों, तापों एवं दुःखों से छुड़ाकर सुख, शान्ति एवं आनन्द प्रदान कीजिए।

❑❑

| | | |
|---|---|---|
| आर./आर. नं० १६३३०/६७ | | रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20 |
| Post in Delhi R.M.S | जुलाई 2019 | लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२० |
| ०५-११/७/२०१६ | | Licenced to post without prepayment |
| भार- ४० ग्राम | | Licence No. U (DN) 144/2018-20 |


## पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८


**ओ३म्**

**भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)**

सत्य के प्रचारार्थ

# सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| ● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16 | मुद्रित मूल्य 50 रु. | प्रचारार्थ 30 रु. | प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं |
| ● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16 | मुद्रित मूल्य 80 रु. | प्रचारार्थ 50 रु. | |
| ● उपहार संस्करण | मुद्रित मूल्य 1100 रु. | प्रचारार्थ 750 रु. | |
| ● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30, 8 | मुद्रित मूल्य 150 रु. | | प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन |

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

**आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट**
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com


छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.......................

ग्राम.......................

डा0 .......................

जिला.......................




मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।